विवेकवानोंके साथ संगति ही है, वह अगर कुराहमें चले तो उसमें उसका अपराध भी क्या? यमदंडने अपनी कथा यहीं पर समाप्त की। राजाने अब भी कथाका मतलब नहीं समझा। यमदंड अपने घर चला गया। इस तरह छठा दिन भी बीता।

सातवें दिन यमदंड राजसभामें गया। राजाने पूछा—चोर मिला? वह बोला—नहीं। राजाने कहा—तब इतनी देर कहाँ लगी? यमदंड बोला—महाराज, एक जगह चबूतरे पर एक माली कथा कह रहा था, मैं उसे सुनने लगा। इससे देरी हो गई। राजाने वह कथा सुनानेको यमदंडसे कहा, यमदंडने कहा—अच्छा महाराज, सुनिए।

अवन्ति देशमें उज्जयिनी नगरी है। उसमें सुभद्र नामका एक व्यापारी था। उसकी दो स्त्रियाँ थीं। एक दिन सुभद्र व्यापारके लिए बाहर जानेकी इच्छासे अपनी दोनों स्त्रियोंको अपनी माताको सौंपकर आप शुभ मुहूर्तमें अपने साथियोंके साथ विदेशके लिए रवाना हुआ और नगरके बाहर जाकर ठहरा। सुभद्रकी मा व्यभिचारिणी थी। सो वह लड़केको घर बाहर होते ही अपनी फुलवारीमें यारको लेकर जा सोई। रातको किसी कामके लिए सुभद्र घर पर आया और दरवाजे बाहरसे उसने पुकारा—मा, किंवाड़ खोल। माने लड़केकी आवाज सुनकर किंवाड़ खोल दिये। पर वे दोनों मा और यार डरके मारे भागे और घरके एक कोनेमें छुप गये। जब लड़का भीतर आया तो उसने अपनी माके पहरनेका कपड़ा

अरंडके पेड़ पर टँगा देखा। वह मनमें विचारने लगा—आश्चर्य है यह सत्तर वर्षकी बुड्ढी हुई तब भी कामसेवन करती है, उसे छोड़ती नहीं है। बड़ीही विचित्र बात है—गज़ब तमाशा है। यह सब लीला कामदेव महाराजकी है जो मरेको भी मार रहा है। नीतिकारने बहुत ही ठीक कहा है—जो दुबला-पतला है, काना और गंजा है, जिसके कान पूँछ नहीं हैं, फोड़ोंमेंसे पीब निकल रही है, देहमें सैकड़ों कीड़े बिलबिला रहे हैं, भूखके मारे तड़फ रहा है और गलेमें फूटे घड़ेका गला पड़ा है, ऐसा होकर भी कुत्ता कुत्तीके पीछे लगा फिरता है। इसीलिए कहना पड़ता है कि कामदेव मरेको भी मारता है। सुभद्र और भी विचारने लगा—स्त्रियोंके चरित्रको, उनकी करतूतोंको कोई नहीं जान सकता। लोगोंका यह कहना झूठ नहीं है कि स्त्रियाँ किसीसे लिपटती हैं, तो किसीको मीठी बातोंसे खुश रखती हैं; किसीको देखती हैं, तो किसीके सामने किसी दूसरे यारके लिए रोने लगती हैं; एकको शपथ खाकर प्रसन्न करती हैं, तो दूसरे पर गाढ़ा प्रेम दिखलाती हैं; किसीके साथ सो रही हैं, तो पड़ी पड़ी ध्यान किसी दूसरेका ही लगा रही हैं। स्त्रियाँ ऐसी कुटिल होती हैं, यह बात सब जानते हैं तो भी लोग उन्हें बहुत मानते हैं। नहीं मालूम किस धूर्तने इनकी रचना की? किस पाजीने इन्हें बनाया? जब बुढ़ापेमें मेरी माका यह हाल है तो न जाने उन दोनों जवान औरतोंकी क्या दशा होगी? जिस तूफानमें, जिस वायुके वेगमें

साठ साठ सालके हाथी गायब हो गये—उड़कर लापता हो गये, उसमें मच्छरोंकी बातको तो जाने दीजिए बेचारी गौओंकी भी कोई गिनती नहीं। ऐसा विचार कर सुभद्र अपनी दोनों स्त्रियोंको शिक्षा देने लगा—मैं जाते समय तुम दोनोंको अपनी माकी रखवालीमें छोड़ गया था। रातको मैंने लौटकर देखा तो मेरी मा एक यारको लेकर फुलवारीमें पड़ी है और अरंडके पेड़ पर उसके कपड़े रक्खे थे। मैंने सब भेद जान लिया। मेरा सब घर चौपट हो गया। यमदंडने यहीं पर कथा समाप्त की। राजाने इस कथाका भी कुछ मतलब न समझा। यमदंड अपने घर चलागया। इस तरह सातवाँ दिन भी बीत गया।

आठवें दिन यमदंडको सभामें आया देखकर राजाके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उसने क्रोधसे लाल होकर पूछा—क्यों यमदंड, चोर मिला या नहीं? यमदंड बोला—महाराज, चोरका कहीं पता न चला। यह सुनकर राजाने शहरके सब महाजनोंको बुलाकर कहा—देखिए, अब मेरा कोई दोप नहीं है। यह पाजी मुझे सात दिनसे धोखा दे रहा है। अभीतक न चोर लाया, न चोरीका माल। अब मैं इसके सौ टुकड़े कर उनसे दिशाओंकी बलि दूँगा। इस बातके सुनते ही यमदंड घर गया और जनेऊ, अँगूठी, तथा खडाऊँ लाकर उसने उन तीनों चीजोंको राजसभामें रख दिया और कहा—महाजनो, आप न्यायकर्ता हैं, (उन तीनों चीजोंको

दिखाकर) यह चोरीका माल है (राजा, मंत्री और पुरोहितकी ओर इशारा करके) और ये तीनों चोर हैं। यह कह कर यमदंडने एक पद्य पढ़ा, जिसका भावार्थ यह है, कि जहाँ राजा, मंत्री और पुरोहित ही जब चोर हैं, तब हम सब लोगोंको जंगलमें जाकर रहना चाहिए। क्योंकि जिसकी शरणमें हम लोग हैं उसीसे हमें जब भय प्राप्त है—रक्षक ही जब भक्षक बन रहा है तब उसकी पुकार किसके पास की जाये ? यमदंडने महाजनोंसे और भी कहा—यदि आप लोग इस अन्यायी, अविवेकी राजाका परित्याग न करेंगे, इसे न छोड़ेंगे तो आप लोग भी पापके भागी होंगे। यह आपको याद रखना चाहिए। नीतिकारोंने भी कहा है कि—

शत्रुसे मिले हुए मित्रको, व्यभिचारिणी स्त्रीको, कुलको नाश करनेवाले पुत्रको, मूर्ख मंत्रीको, अविवेकी राजाको, आलसी वैद्यको, रागी देवको, विषयलम्पटी गुरुको, और दया रहित धर्मको, मोहके वश जो नहीं छोड़ता उसका कभी कल्याण नहीं होता। वह कल्याणसे वंचित ही रहता है। महाजनोंने भी उन तीनों चीजोंसे जान लिया कि राजा, मंत्री, और पुरोहित ही चोर हैं। इसके बाद सबने विचार कर राजाको निकाल कर राजकुमारको गद्दी पर बैठाया, मंत्रीको निकाल कर मंत्रीपुत्रको मंत्री बनाया तथा पुरोहित निकाल कर पुरोहितके पुत्रको राज पुरोहित बनाया। जब ये तीनों शहरसे बाहर निकल रहे थे या निकाले जा रहे थे, तब लोग कहने

लगे—कि विनाशके समय बुद्धि भी नष्ट हो जाती है यह कहावत सच है।

रामचन्द्रने सोनेके मृगकी मायाको न जाना। नहुष राजा ब्राह्मणोंको गाड़ीमें जोतता था। अर्जुनके पुत्रकी मति ब्राह्मणकी गाय और बछड़ोंको चुरानेमें प्रवृत्त हो गई। युधिष्ठिर अपने चारों भाई और द्रौपदीको जुएमें हार गये। कहनेका मतलब यह कि विनाशका समय आजाने पर समझदारोंकी भी बुद्धि बिगड़ जाती है—अक्ल गुम हो जाती है। देखो न, रावणके दिमागमें एक सौ आठ विद्याएँ समाई हुई थीं, पर जब लंका नष्ट होने लगी—जब रामचन्द्र उसका नाश करने पर उतारू हुए तब बेचारे रावणकी एक भी विद्या काम न आई। इत्यादि कहकर लोग चुप रहे। सुयोधन विचारने लगा कि मैंने तो विचारा था कि इस उपायसे यमदंडको मार कर मैं सुखसे राज्य करूँगा, पर यह आफ़त मेरे ही सिर पड़ी। कर्मोंकी बड़ी ही विचित्र गति है।

पाठकगण, अब प्रकृत विषय पर आजाइए। सुबुद्धि मंत्रीने सुयोधन राजाकी कथा समाप्त की। अब फिर वही प्रकरण चलता है।

सुयोधन राजाकी कथा कह कर सुबुद्धि मंत्री उदितोदय महाराजसे कहने लगा—महाराज,इस कथासे आपने जान लिया होगा कि किसीके साथ विरोध न करना चाहिये—किसीका तिरस्कार न करना चाहिए। ऐसा करनेसे अपना

ही विनाश हो जाता है। इसके सिवा और कुछ नहीं होता। नीतिकारोंका भी कहना है—छोटेसे छोटेका भी तिरस्कार करना ठीक नहीं। क्योंकि छोटा भी मौका पाकर बड़ा काम कर डालता है। टीड़ियोंके झुंडने एक बार समुद्रको भी व्याकुल कर दिया था। उदितोदय राजा मंत्रीकी इस उपदेश पूर्ण कहानीको सुनकर बोला—तुमने जो कुछ भी कहा वह बिलकुल ठीक है। यदि मैं उपवनमें चला जाता तो जरूर ही विरोध खड़ा हो जाता और मेरी भी वही दशा होती जो सुयोधन राजाकी हुई थी। इसमें जरा भी संदेह नहीं। इस बातको कौन जान सकता है कि बीचमें किस कर्मका उदय आ जाय? देखिये, गर्मीके दिनोंमें मारे गर्मीके खूब प्यासा कोई हाथी भरे तालावको देख कर दौड़ा दौड़ा पानी पीने गया, पर इस जल्दीके मारे वह किनारे पर कीचड़में फँस गया। भाग्यसे न तो वह पानी पी सका और न कीचड़से निकल कर बाहर ही आ सका—दोनों तरफसे हाथ धो बैठा। मतलब यह कि होनहारको कोई देख नहीं आया। राजा मंत्रीसे बोला—अब मुझे इस बातका निश्चय हो गया कि योग्य मंत्रीके विना राज्यका नाश हो जाता है। नीतिकारोंने यह झूठ नहीं कहा है, कि विषसे एक ही आदमी मरता है, हथियार भी एक वारमें एक ही आदमीको मार सकता है, पर जहाँ अयोग्य मंत्री हुआ और उसने उलटी सम्मति दी, कि राज्यका, राजाका और राजाके परिवारका समूल नाश

हो जाता है। इसलिए जो राजाको अनर्थोंसे बचाता है, कुमार्गसे उसकी रक्षा करता है, वही राजाका परम मंत्री है। यह सुनकर सुबुद्धि मंत्रीने कहा—महाराज, अपने स्वामीका हित करना यही तो मंत्रीका कर्तव्य है। राजा बोला—तुम संसारमें सचमुच सत्पुरुष हो। तुम्हारे होनेसे ही मैं बड़े भारी अपशय और दुर्गतिसे बच गया। नीतिकारोंने क्या ही अच्छा कहा है— मूर्खोंकी संगतिसे गुणोंका नाश होता है, पापमय विचारोंसे धनका नाश होता है, युवतिके सम्पर्कसे तप नष्ट होता है और नीचोंके साथ रहनेसे बुद्धि मलिन होती है। इत्यादि प्रकारसे सुबुद्धि मंत्रीकी राजाने बड़ी प्रशंसा की और कहा—अच्छा तो अब रात बिताने और मनोविनोदके लिए कहीं नगरहीमें घूम आवें। वहाँ कुछ न कुछ कौतूहल देखेंगे। क्योंकि सोते रहना तो अच्छा नहीं। समझदारोंका समय तो धर्म-चर्चा अथवा मनोविनोदमें बीतता है। हाँ गँवार लोग जरूर अपने समयको सोनेमें, या दंगा फ़िसादमें बिताते हैं। मंत्री बोला—अच्छी बात है, चलिए। इस प्रकार विचार कर राजा और मंत्री चुपचाप चल दिये। नगरके भीतर दोनोंने एक अचम्भा देखा। वे देखते हैं कि एक आदमीकी केवल परछाईं तो दिखलाई देती है मगर आदमी नहीं।

राजाने मंत्रीसे पूछा—यह कौन है? मंत्री बोला—इसका नाम सुवर्णखुर है। यह अंजनवटी विद्यामें बड़ा प्रसिद्ध

है। इसके पास आँखोंमें आँजनेका एक ऐसा अंजन है कि उसे आँज लेने पर इसे कोई देख नहीं पाता। राजाने पूछा— यह कहाँ जा रहा है? इसीके साथ हमें भी चलना चाहिए। ऐसा विचार कर दोनों उसके पीछे पीछे हो लिये। वह चोर धीरे धीरे अर्हद्दास सेठकी दीवालके ऊपर जो वड़का पेड़ था, उस पर चढ़कर कोई न देख सके इस तरह वृक्षकी आड़में छुप गया। राजा और मंत्री भी उसी पेड़के नीचे छुप कर बैठ गये। पहले कह आये हैं कि नगरकी सब स्त्रियाँ राजाकी आज्ञासे कौमुदी-महोत्सव मनानेको उपवनमें गई हैं और नगरके लोग अपने अपने घरोंहीमें आनन्द मना रहे हैं। लेकिन अर्हद्दास सेठकी आठों स्त्रियोंने इस उत्सवमें भाग नहीं लिया। राजाकी आज्ञासे आठों स्त्रियोंने और सेठने अपने घरके चैत्यालयमें ही धर्मोत्सव मनाया। यहाँसे आगे फिर कथा आरंभ होती है।

अर्हद्दास आठ दिनका उपवासा था। उसने अपनी स्त्रियोंसे कहा—राजाकी आज्ञासे आज नगरकी सब स्त्रियाँ क्रीड़ा करने उपवनमें गई हैं, तुम भी जाओ। मैं अपना धर्म-साधन यहीं करता हूँ यदि। तुम न जाओगी तो राजाकी आज्ञा का भंग होगा। आज्ञा भंग होने पर राजा सर्पकी तरह भयंकर हो उठेगा और सब तरहसे अपना अनिष्ट कर डालेगा। क्योंकि नीतिकारोंने कहा है कि साँपका डसा तो मणि, मंत्र और औषधि आदिसे अच्छा होता देखा गया, पर राजाके दृष्टि रूपी विषका मारा हुआ कभी जीता न देखा गया।

राजाका जिस पर कोप हो जाता है फिर वह बचता नहीं है। वे स्त्रियाँ बोलीं—नाथ, हमारे भी आज आठ आठ उपवास हो गये। उपवासके दिनोंमें धर्मके कामोंको छोड़कर क्रीड़ाके लिए उपवनमें हम कैसे जायँ? यह आप ही विचारें। राजाकी ऐसी आज्ञासे हमें क्या मतलब? जो हमने उपार्जन किया, जो होना होगा, वह होगा। हम उपवनमें न जायँगी। होनहारको कोई टाल नहीं सकता। पानीमें डूब जाओ, सुमेरु पर्वतकी चोटी पर जा बैठो, युद्धमें शत्रुको जीत लो, व्यापार, खेती, नौकरी, चाकरी आदि सब कला सीखलो और प्रयत्न करके पक्षियोंकी तरह अनन्त आकाशमें उड़ने लग जाओ, पर जो होना होता है वह तो हो ही कर रहता है—अनहोनी कभी नहीं होती। कर्मोंकी ऐसी ही विचित्रता है। इसलिए हम तो न जायँगी। यह सुनकर सेठने कहा—तुमने जो कुछ कहा वह सच है। ऐसा ही है। उपवासके दिन जिनशास्त्रका श्रवण तथा भक्ति, पूजादि ही करना चाहिए। इसीसे कर्म कटते हैं। वनमें जाकर क्रीड़ा करनेसे—खेलने कूदनेसे नहीं कटते। आचार्य कहते हैं—जिसका मन निश्चल है, व्रतोंमें दृढ़ता है, पाँचों इन्द्रियाँ वशमें हैं, तथा जो आत्मा-में लीन रहता है और हिंसासे दूर रहता है, उसको मोक्षकी प्राप्ति अवश्य होती है। स्त्रियोंने सेठसे कहा—नाथ, आइए आप और हम अपने घरके सहस्रकूट चैत्यालयमें जागरण करें। सेठने कहा—ठीक है। इसके बाद वे सब नाना प्रकार

शुद्ध द्रव्य लेकर सहस्रकूट चैत्यालयमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने मंगल पाठ पढ़ा, भगवानकी पूजा की और बड़ा आनन्द मनाया। उस समय मौका पाकर वे स्त्रियाँ सेठसे कहने लगीं—स्वामिन्, आपको दृढ़तर सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति कैसे हुई? कहिए। सेठने कहा—अच्छा पहले तुम्हीं बतलाओ कि तुम्हें सम्यग्दर्शन किस कारणसे हुआ? वे कहने लगीं—स्वामिन्, आप हम लोगोंके पूज्य हैं, इसलिए पहले आपही कहिए। फिर हम तो कहेंगी हीं। देखिए, अग्नि ब्राह्मणोंकी गुरु है, ब्राह्मण सब वर्णोंका गुरु है, पति स्त्रियोंका गुरु है तथा अतिथि सबका गुरु है। इस न्यायसे प्रथम आपहीको कहना चाहिए।

इसी बीचमें अर्हद्दास सेठकी सबसे छोटी कुंदलता नामकी स्त्री बोल उठी—नाथ, ऐसे आनन्ददायक और सबको प्यारे कौमुदी-महोत्सवको छोड़कर यह भगवानकी पूजा, उपवास, तप आदिक किस लिए किया जा रहा है? सेठनें उत्तर दिया—प्रिये, हम अपने परलोकके सुधारनेके लिए यह सब पुण्य-धर्म कर रहे हैं। कुंदलताने कहा—नाथ, परलोक देख कर कोई आया है क्या? अथवा संसारमें किसीने धर्मका फल देखा भी है? हाँ यदि पुण्यका फल इस लोक और परलोकमें दिखाई देता हो तब तो यह देवपूजादिक करना युक्तियुक्त है—ठीक है; नहीं तो व्यर्थ है। यह सुन सेठ कहने लगे—पुण्यादिकका परलोकमें जो फल होता है वह तो दूर रहे, पर धर्मका फल मैंने प्रत्यक्ष देखा है, उसे सुन।

कुंदलताने कहा—अच्छा नाथ, कहिए। मैं उसे सुनती हूँ। सेठने तब अपने सम्यक्त्व प्राप्त होनेकी कथाको यों कहना आरंभ किया—

इसी उत्तरमथुरामें पद्मोदय राजा थे। यशोमति उनकी रानी थी। वर्तमान राजा उदितोदय उन्हीं पद्मोदयके पुत्र हैं। पद्मोदयके समयमें मंत्री संभिन्नमति था। मंत्रीकी स्त्री सुप्रभा थी। सुबुद्धि नामका उसके एक पुत्र है। यही सुबुद्धि इस समय उदितोदयका मंत्री है। तथा यहीं पर अंजनवटी आदि विद्यामें निपुण रूपखुर नामका एक चोर था। उसकी स्त्रीका नाम रूपखुरा था। सुवर्णखुर नामका इसके एक लड़का है। यहीं जिनदत्त सेठ हुए। जिनमति उनकी स्त्रीका नाम था। इन्हीं जिनदत्तका पुत्र मैं अर्हद्दास हूँ।

ये सब बातें राजाने, मंत्रीने, और बड़के पेड़ पर छुपे हुए सुवर्णखुर चोरने भी सुनी। चोरने मनमें विचारा—चोरी तो मैं हर रोज करता ही रहता हूँ, आज न सही। पर इस सेठकी बातें तो सुनूँ। देखें यह क्या क्या कहता है। राजा और मंत्रीने भी सेठकी बातें सुननेका विचार किया।

सेठ बोले—जो कथा मैंने सुनी है, देखी है, और अनुभवकी है, उसे मैं कहता हूँ। सावधान होकर सुनना। उनकी स्त्रियाँ बोलीं—नाथ, हम सुनती हैं, आप कृपा कर कहिए।

सेठ कहने लगे—यह रूपखुर चोर सातों व्यसनोंका सेवन करनेवाला था। एक दिन जूआ खेलकर उसने बहु-

तसा धन जीता। उस धनको उसने भिखारियोंको बाँट दिया। दो पहरको जब उसे भूख लगी तो वह घरकी तरफ आने लगा। रास्तेमें उसे राजमहल पड़ा। रूपखुरको राजमहलके रसोईघरकी ओरसे बहुत अच्छी सुगंध आई। वह मनमें विचारने लगा—मुझे कुछ मुश्किल नहीं है, फिर अपने अंजनको लगाकर अदृश्य होकर ऐसी सुगन्धित रसोई क्यों न खाई जाय? ऐसा विचार कर उसने आखोंमें अंजन लगाया और फिर निडर होकर वह राजमहलमें चला गया। वहाँ उसने राजाके साथ भोजन करके अपने घरका रास्ता लिया। अंजनचोरने यह कायदा हर रोजके लिए बना लिया। हर रोज वह आता और राजाके साथ भोजन करके चला जाता। रूपखुरको इस प्रकार रोज रोज राजाके साथ भोजन कर जानेसे राजा धीरे धीरे दुबला हो गया। दिन एक मंत्रीने राजाको दुबला देखकर मनमें विचारा—इन्हें क्या खानेके लिए अन्न नहीं मिलता? ये इतने दुबले क्यों हैं? मेरी समझसे तो अन्नके न मिलनेसे ही ऐसी दशा हो गई है। नीतिकार भी ऐसा ही कहते हैं—

आखोंके बिना मुँहकी, न्यायके बिना राज्यकी, नमकके बिना भोजनकी, धर्मके बिना जीवनकी, चन्द्रमाके बिना रातकी और अन्नके बिना शरीरकी शोभा नहीं।

निदान मंत्रीने राजासे पूछा—महाराज, आपका शरीर दुबला क्यों पड़ता जाता है? इसका कारण कहिए। यदि

कोई चिन्ता हो, तो वह बतलाइए। राजाने कहा—तुम्हारे रहते हुए भी मुझे कोई चिंता हो सकती है क्या? पर आश्चर्य इस बातका है कि मैं दुगुना, तिगुना, चौगुना, और पँचगुना तक भोजन कर जाता हूँ, पर तृप्त नहीं होता। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मेरे साथ कोई भोजन करता हो। इसी कारणसे मेरे उदरकी अग्नि शांत नहीं होती।

इस बातको सुनकर मंत्रीने मनमें विचारा कि कोई अंजन लगाकर अदृश्य हो राजाके साथ भोजन करता है। इसीलिए ये दुबले होते जाते हैं। मंत्रीने एक दिन इसका पता लगानेको एक प्रयत्न किया। राजाके भोजनके कुछ समय पहले उसने रसोईघरके आस पास खूब आकके सूखे फूल बिछवा दिये, चारों कोनोंमें तीव्र धूपके धुएँसे भरे हुए घड़ोंको मुँह बाँधकर रखवा दिया, चारों तरफ हथियार लिए सामन्तोंको खड़ा कर दिया और एक जगह बड़े बड़े मल्लोंको छुपा दिया इस प्रकार सब ठीक प्रबंध करके ये थोड़ी देर तक ठहरे होंगे कि अंजनचोर आ पहुँचा। जब वह रसोई घरमें जाने लगा तो आकके फूलों पर उसके पाँव पड़नेसे फूल चुरमुराने लगे। उससे सब लोगोंने जान लिया कि चोर आ गया। उन्होंने उसी समय सब किवाड़ोंको बन्द करके मजबूत अर्गला (आगल) लगादी। उन धुएँके घड़ोंका मुँह खोल दिया गया। चोरकी आखोंमें धुँआ लगा, आँखे तिल मिलाने लगीं, आंखोंका अंजन निकल गया और चोर स्पष्ट

दिखाई देने लगा। तब मल्लोंने उसे पकड़ लिया। उसे वे राजाके पास ले गये। ऐसी दशा देख चोर मनमें विचारने लगा—राजाके साथ भोजन करना गया सो तो गया ही, पर दुर्घटनासे अब तो मेरा घर द्वार भी जाता दिखाई देता है। मैं दोनों तरफसे गया। ठीक मेरी वही दशा हुई जैसी कि उस हाथी की, जो गरमीमें प्यासके मारे तालावमें पानी पीने गया था और दैवयोगसे किनारे पर कीचड़में फँस गया था।

मैंने कुछ तो विचारा था, पर दैवयोगसे कुछ और ही हो गया। सच है मनचाहा कभी नहीं होता। एक समय एक राजकुमारी एक भिक्षु पर प्रसन्न हो गई थी, पर दैवयोगसे उस भिक्षुकको ही व्याघ्रने खा लिया। इसी तरह एक भौंरा कमलिनीके भीतर बैठा बैठा रातमें विचार बाँध रहा था—रात बीतते ही सवेरा होगा, सूर्यका उदय होगा, कमल खिलेंगे और मैं रस पान करूँगा कि इतनेहीमें एक हाथीने आकर उस कमलिनीको उखाड़ कर खा लिया। भौंरेके विचार ज्योंके त्यो रह गये। चोर इसी उधेड़ बुनमें लगा था कि राजाने सुभटोंको आज्ञा देदी कि इसको सूली पर चढ़ादो। यह सुनकर किसीने कहा—देखो, एक व्यसनका सेवन करनेवाला भी जब नियमसे मारा जाता है, तब सातों व्यसनोंको सेवन करनेवालेका तो कहना ही क्या है। यही कारण था जो जूआ खेलनेसे पांडवोंका,

मांस भक्षण करनेसे बक राजाका, मदिरापानसे यादवोंका, वेश्या सेवनसे चारुदत्त सेठका, शिकार खेलने से ब्रह्मदत्त राजाका, चोरी करनेसे शिवभूतिका और परस्त्रीके सम्पर्कसे रावणका विनाश हुआ। जब एक एक व्यसनके सेवनसे इनकी यह दशा हुई तो सबके सेवनसे कौन नर विनाशको प्राप्त न होगा? इसके बाद राजाकी आज्ञासे सुभटोंने अंजन चोरको सूली पर चढ़ा दिया। राजाने चारों तरफ कुछ नौकरोंको बैठा कर कह दिया कि देखो, इसके साथ जो कोई बातचीत करे वह राजद्रोही है, और उसके पास चोरीका माल है क्या, यह देखना। इसके बाद उसकी मुझे फौरन सूचना देना।

इसी समय जब कि अंजनचोर सूली पर अधमरा लटक रहा था, तब मेरे पिता जिनदत्त मुझको साथ लिए शहर बाहर के सहस्रकूट चैत्यालयमें अभिषेक, पूजन और परम गुरु श्रीजिनचन्द्रभट्टारकके चरणोंकी वन्दना करके अपने घरको लौट रहे थे। रास्तेमें अंजनचोर सूली पर लटक रहा था। उसके शरीरसे खून टपक रहा था। प्यासकी व्याकुलतासे उसके प्राण निकलना ही चाहते थे। मैंने उसे देख कर पितासे पूछा—पिताजी, यह सूली पर क्यों चढ़ाया गया? पिताजीने कहा—बेटा, पहले जो कर्म उपार्जन किये, वे अपना फल दिये बिना कैसे छूट सकते हैं? चाहे कोई पातालमें प्रवेश कर जाय, स्वर्गमें चला जाय, सुमेरु पर्वत पर

चढ़ जाय, मंत्र, औषधि और अस्त्र-शस्त्रोंसे अपनी रक्षा करे, पर जो होना होता है, वह होकर ही रहता है। इसमें विचार करनेका कोई कारण नहीं। जिनदत्त और अर्हद्दासकी सब बातें चोरने सुनलीं। वह विचारने लगा—जिसके पैरोंको भेड़ियेने खा लिया और कौओंने सिरको चींथ डाला, ऐसे पूर्व कर्मके उदय आने पर समझदार मनुष्य भी क्या कर सकता है? इसके बाद वह बोला—सेठजी, आप दयाके समुद्र हैं और धर्मात्मा हैं। वृक्षकी तरह बिना कारण ही जगत्का उपकार करनेवाले हैं। जो कुछ भी आप करते हैं वह सब परोपकारके लिए। मुझे बड़े जोरसे प्यास लगी है, तब पानी पिलाकर मेरा भी उपकार कीजिए। आज पूरे तीन दिन हो गये, क्या करूँ प्राण भी नहीं निकलते। यह कह कर वह जिनदत्तके परोपकारकी महिमा सुनाने लगा—जिसके चित्तमें सम्पूर्ण प्राणियों पर दया है, जिसका हृदय दयासे भींगा है, उसीको ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति होती है। जटा रखा लेने, भस्म लगालेने और गेरुआ कपड़ा पहनलेनेसे कुछ नहीं होता।

वृक्षोंको देखिए, स्वयं तो वे घाममें खड़े हैं, दुःख सह रहे हैं, पर दूसरोंको छाया करते हैं, और फलते भी हैं तो परोपकार हीके लिए। अपने लिए नहीं। गौएँ भी परोपकारके लिए दूध देती हैं, नदियाँ बहती हैं। मतलब यह कि सज्जन पुरुष जो कुछ भी करते हैं। वह सब परोपकारके लिए। सेठजी, आप परोपकारी हैं। जान पड़ता है आपका

जन्म परोपकारार्थ ही हुआ है। चोरने सेठकी स्तुति-प्रशंसा कर कहा—मुझे पानी पिला दीजिए। आपका बड़ा उपकार होगा। सेठजी यह जानते थे कि इसे पानी पिलाना राजाकी आज्ञाके विरुद्ध है। पर उसकी बातें सुनकर उनका चित्त पिघल गया। उन्होंने कहा—भाई, मैंने बारह वर्ष तक अपने गुरुकी सेवा की, आज प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे एक मंत्र बताया है। अब इस समय मैं यदि पानी लेने चला जाऊँ तो वह मंत्र भूला जाता हूँ। इसलिए मैं नहीं जाता। चोरने पूछा—उस मंत्रसे क्या सिद्धि होती है? सेठने कहा--इसका नाम पंच नमस्कार मंत्र है। इससे देवोंकी संपदा मिलती है, मुक्तिरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, चारों गतियोंके दुःख मिट जाते हैं, पापोंका नाश होता है, पापमें प्रवृत्ति नहीं होती, और मोहका क्षय होता है। जिस मंत्रका ऐसा माहात्म्य है, वह पंचनमस्कारात्मक देवता हम सबकी रक्षा करे। हजारों पापों और सैकड़ों जीवोंका वध, करनेवाले बहुतसे हिंसक जीव भी इस मंत्रकी आराधना करके मोक्षको गये। यह सुनकर चोरने कहा—अच्छा तो जबतक आप पानी लेकर आते हैं तबतक मैं इस मंत्रको याद रक्खूंगा, इसका पाठ किया करूँगा। इसलिए आप मुझे इस मंत्रको सिखा दीजिए। सेठने चोरकी बात मानली। उसे मंत्र सिखाकर वे पानी लेने चले गये। इधर मंत्रका पाठ करते करते ही चोरने प्राण छोड़ दिये। इस पंच परमेष्ठी मंत्रके माहात्म्यसे वह

सौधर्मस्वर्गमें सोलहों प्रकारके आभूषणोंसे भूषित और अनेक देव-देवांगनाओंसे युक्त देव हुआ। इधर कुछ देर बाद सेठ पानी लेकर चोरके पास आये। चोरको मरा देखकर सेठने विचारा—जान पड़ता है, यह समाधि मरण कर स्वर्ग गया। मैंने तब पिताजीसे कहा—पिताजी, सत्संगतिसे किसके पाप दूर नहीं होते? वे वहाँसे लौटकर फिर अपने गुरुके पास गये। उन्होंने सब वृत्तान्त उनसे कहा। उस दिन उपवास कर वे गुरुके पास चैत्यालयमें ही रहे। गुरु महाराजने वह सब वृत्तान्त सुनकर कहा—महा पुरुषोंके संसर्गसे सभीको ऊँचे पदकी प्राप्ति होती है। पानीकी बूँद गरम लोहे पर यदि पड़ती है तो उसका नाम निशान भी नहीं रहता; लेकिन वही बूँद कमलपत्र पर पड़नेसे मोती जैसी मालूम पड़ती है और समुद्रकी सीपमें पड़ जाये तो वह मोती ही बन जाती है। मतलब यह कि वस्तुको जैसी जैसी संगति मिलती जायगी उससे उसमें वैसे वैसे ही गुणोंका समावेश होता जायगा। मनुष्योंमें भी जो उत्तम, मध्यम, और जघन्य गुण देखे जाते हैं, बहुधा वह संसर्गहीका फल है। गलियोंका पानी जब गंगाजीमें मिल जाता है तब बड़े बड़े देवता भी उसे माथे पर चढ़ाते हैं—उसे नमस्कार करते हैं। यह सब माहात्म्य महा पुरुषोंकी संगतिका है। महा पुरुषोंकी संगतिसे सबको उच्च पदकी प्राप्ति होती है। गुरुजी महाराज इतना कह कर चुप हो रहे।

इधर चोरके साथ बात—चीत करते हुए पिताजीको उन पहरेदारोंने देखलिया। सो उन्होंने जाकर राजासे कह दिया कि महाराज, जिनदत्त सेठने उस चोरसे बात-चीत की है। राजाने कहा—यह राजद्रोही है। जरूर उसके पास चोरीका माल है। इस प्रकार क्रोधमें आकर जिनदत्त सेठको पकड़नेके लिए उसने अपने नौकरोंको भेज दिया।

इधर सौधर्म—स्वर्गमें वह देव विचार करने लगा—मैं-ने यह देवपर्याय पुण्यसे प्राप्त की है। पुण्यके बिना ऐसी सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती। आचार्य कहते हैं—मिष्ट भोजन, सुखपूर्वक शयन, अथवा सुगंधित फूलोंके हार, सुन्दर वस्त्र, स्त्री, आभूषण, हाथी, घोड़े, गाड़ी और ऊँचे ऊँचे मकान यह सब सामग्री विना प्रयत्न ही मिल जाती है, जब कि पूर्वमें किये हुए पुण्यका उदय होता है। इसके बाद अव-धिज्ञानसे देवने सब वृत्तान्त जान कर विचारा—जिनदत्त सेठ मेरा धर्मोपदेशक है। उसने मरते समय मुझे धर्मका उपदेश दिया था। उसके उपकारको मैं कभी न भूलूंगा। नहीं तो मेरे समान कोई पापी न होगा। क्योंकि जब एक अक्षरको पढ़ानेवालेको भूल जाना—उसके उपकारको न मानना पाप है, तो फिर जिसने धर्मका उपदेश दिया है, उसके उपकारको भूलना तो महा पापसे भी बढ़कर है। यह विचार कर वह देव अपने धर्मोपदेशक गुरु जिनदत्त सेठके उपसर्गको निवारण करनेके लिए डंडा लेकर सेठके दरवाजे-

देवने बड़ा भयावना रूप धारण किया। उसे देख राजा डरा और भागने लगा। देव भी उसके पीछे पीछे दौड़ा। देवने उससे कहा—पापी, इस समय जहाँ तू जायगा वहीं मैं तुझे मारूँगा। हाँ गाँवके बाहर सहस्रकूट चैत्यालयमें जिनदत्त सेठ है, यदि तू उनकी शरणमें जाय तो तुझे मैं बचा सकता हूँ। नहीं तो विना मारे न छोड़ूँगा। यह सुन राजा सेठकी शरणमें पहुँचा और सेठसे बोला—मुझे बचाइए, मेरी रक्षा कीजिए! मैं आपकी शरण आया हूँ। यदि आप मुझे बचालेंगे तो मैं बच जाऊँगा और आपको भी पुण्य होगा। यह नीति भी है कि नष्ट भ्रष्ट हुए कुलका, तालावका, बावड़ीका, कुएका, राज्यका, शरणागतका, गौका, ब्राह्मणका, और जीर्ण मन्दिरका जो उद्धार करते हैं—इनको नाश होनेसे जो बचाते हैं उन्हें चौगुना पुण्य होता है। यह सुनकर सेठने मनमें विचारा—यह जो राजाके पीछे पड़ा है वह कोई राक्षस है और विक्रियासे इसने ऐसा भयंकर रूप धारण किया है। सिवा राक्षसके और कोई ऐसा चमत्कार नहीं दिखला सकता। ऐसा विचार कर सेठ उस देवसे बोले—हे सुराधीश, पीछे भागते हुएका पीछा नहीं किया जाता। नीति भी ऐसी ही है कि जो डरसे भाग रहा हो, बलवानको उसका पीछा नहीं करना चाहिए। पीछा करनेसे शायद वह मृत्युका निश्चय कर—जीनेकी आशा छोड़ न जाने क्या अनर्थ कर बैठे। क्योंकि ऐसे समय प्रायः सभीको वीरश्री

चढ़ जाया करती है। सेठकी इस नीतियुक्त बातको सुनकर देवने अपने राक्षसी रूपको छोड़ फिर देवरूप धारण कर लिया और सेठकी तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया। पीछे देव-गुरुकी वन्दना कर वह बैठ गया। यह देखकर राजाने पूछा—सुराधीश, क्या स्वर्गमें विवेक नहीं होता, जो तुमने देव-गुरुको छोड़कर एक गृहस्थकी पहले वन्दना की? इसको आचार्य अपक्रम नामका दोष कहते हैं। जनप्रचलित रीतिके विपरीत काम किया जाता है वह अपक्रम कहलाता है। जैसे भोजनके बाद नहाना और गुरुके बाद देववन्दना करना, इत्यादि। यह सुनकर देव बोला—महाराज, मैं सब जानता हूँ। पहले देवकी और पीछे गुरुकी वन्दना की जाती है और इसके बाद श्रावकसे जुहार वगैरह किया जाता है। परन्तु यहाँ कारण वश मुझे ऐसा करना पड़ा है। क्योंकि ये सेठ मेरे परम गुरु हैं। राजाने पूछा—कैसे ये तुम्हारे परम गुरु हैं? देवने तब पहलेका सब वृत्तान्त उसे सुनाया। उस समय वहीं पर बैठे हुए किसी आदमीने कहा—अहा, यह बड़ा ही सत्पुरुष है और यही कारण है कि सत्पुरुष दूसरेके किये उपकारको कभी नहीं भूलते। देखो, नारियलके पेड़ जब छोटे होते हैं, तब लोग उन्हें थोड़ा थोड़ा पानी देते हैं। पर जब वे बड़े होते हैं और फलने लगते हैं तब उन उपकारियोंके लिए एक तो नारियलका बोझा अपने सिर पर उठाते हैं, और फिर उनके थोड़ेसे दिये गये पानीका स्मरण

कर—उनका उपकार मानकर उन्हें अपना अमृततुल्य पानी पिलाते हैं। मतलब यह कि महापुरुष किये उपकारको कभी नहीं भूलते। राजाने फिर पूछा—अच्छा किसकी प्रेरणासे सेठने ऐसा किया था? देव बोला—महापुरुषोंका परोपकार करनेका स्वभाव ही होता है। उन्हें प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं रहती। सूर्यको अन्धकार मिटानेकी आज्ञा कौन देता है? वृक्षोंके हाथ किसने जोड़े थे—कि तुम रास्तेमें लग जाओ, लोग तुम्हारी छायामें खड़े हुआ करेंगे। मेघोंसे कोई प्रार्थना नहीं करता कि तुम पानी बरसाओ। मतलब यह कि सज्जन पुरुष स्वभावहीसे—विना किसीकी प्रेरणाके, परोपकारके लिए कमर कसे रहते हैं। यह सुनकर राजाने कहा—सब धर्मोंमें जैनधर्म ही बड़ा धर्म है। इसकी प्राप्ति बड़े भारी पुण्यसे होती है। सेठ बोले—महाराज, आपने बहुत ठीक कहा। थोड़े पुण्यसे जैनधर्मकी प्राप्ति नहीं होती। प्रभावशाली जैनधर्म, सज्जनोंकी संगति, विद्वानोंका सम्पर्क, बोलनेकी चतुराई, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रवीणता, जिनेन्द्र भगवानके चरण कमलोंमें भक्ति, सच्चे गुरुओंकी सेवा, शुद्ध चारित्र और निर्मल बुद्धि, इन बातोंकी प्राप्ति थोड़े पुण्यवानोंको नहीं होती। जिनदत्तकी बातोंसे प्रसन्न होकर देवने पंचाश्चर्य किये, जिनदत्त सेठकी पूजा की, और प्रशंसा कर वह बोला—कि मैं चोर था, पर आपके प्रभावसे देव हो गया। आपने विना ही कारण मेरा उपकार किया। आपका मैं अत्यन्त कृतज्ञ रहूँगा। यह

सब देखकर राजाको बड़ा वैराग्य हुआ। राजाने कहा—धर्मकी महिमा बड़ी विचित्र है, जो धर्मात्माकी देव भी सेवा करते हैं। जो धर्मात्मा है, उसको साँप हारके समान, तलवार फूलोंकी मालाके समान, विष रसायनके समान, और शत्रु मित्रके समान हो जाता है। उस पर देव प्रसन्न होकर वशमें हो जाते हैं। और अधिक क्या कहें उसके लिए आकाशसे रत्नोंकी वृष्टि तक होती है। इस प्रकार वैराग्यके बाद पद्मोदय राजाने अपने उदितोदय पुत्रको राज्य देकर जिनचन्द्र मुनिराजके पास दीक्षा लेली। इसी प्रकार संभिन्नमति मंत्रीने, जिनदत्त सेठने तथा और भी बहुतोंने दीक्षा ग्रहण की। बहुतोंने श्रावकोंके व्रत लिये और कोई कोई भद्रपरिणामी—सरल स्वभावी ही हुए। देव भी सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर स्वर्ग चला गया।

यह सब कथा सुनाकर अपनी स्त्रियोंसे अर्हद्दास कहने लगा—कि ये सब बातें मैंने प्रत्यक्ष देखी हैं और इसीसे मैं सम्यग्दृष्टि हुआ हूँ। यह सुनकर वे स्त्रियाँ बोलीं—नाथ,आपने इन बातोंको देखा है, सुना है और अनुभव किया है, तब हम सब भी इनका श्रद्धान करती हैं, इन्हें चाहती हैं और इनमें हमारी रुचि भी है। इसी समय सबसे छोटी कुंदलता स्त्री बोली—यह सब झूठ है, इसलिए न मैं इनका श्रद्धान करती हूँ, न मैं इन्हें चाहती हूँ, और न मेरी इन बातोंमें रुचि ही है। इस प्रकार कुन्दलताकी बातको सुनकर उदितोदय राजा;

सुबुद्धि मंत्री और सुवर्णखुर चोरको बड़ा क्रोध आया। राजाने कहा—ये सब बातें मैंने भी प्रत्यक्ष देखी हैं। इस बातको सब लोग जानते हैं कि मेरे पिता पद्मोदयने मुझे राज्य देकर दीक्षा ली और वे मुनि हो गये। यह कुंदलता पापिनी है जो सेठकी बातोंको झूठी बतला रही है। मैं सवेरे ही इसको दंड दूँगा। चोरने सोचा—इस स्त्रीका स्वभाव नीच है, जो यह जिसके प्रसादसे जी रही है उसीके विरुद्ध बात कहती है।

२—मित्रश्रीकी कथा।

अपने सम्यक्त्व प्राप्त होनेके कारणको कह कर अर्हद्दासने मित्रश्री नामकी अपनी दूसरी स्त्रीसे कहा—प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्व प्राप्त होनेके कारणको बतलाओ। मित्रश्रीने तब यों कहना आरंभ किया—

मगधदेशमें राजगृह नामका नगर है। वहाँ संग्रामशूर नामका राजा था। कनकमाला उसकी रानीका नाम था। उसी नगरमें वृषभदास नामका एक सेठ रहता था। वह सम्यग्दृष्टि था, बड़ा धर्मात्मा था और पात्रोंको दान देना, गुणोंमें अनुराग करना, सबके साथ सुख भोगना, शास्त्रका

ज्ञान होना तथा संग्राममें शूरवीर होना, इन लक्षणोंसे युक्त था। सेठकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। वह भी सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे परिपूर्ण थी, बड़ी धर्मात्मा थी। जो स्त्री पतिके अनुकूल चलनेवाली हो, संतोषवती हो, चतुर हो, प्रतिव्रता हो और समझदार हो, वह साक्षात् लक्ष्मी ही है, इसमें कोई संदेह नहीं। जिनदत्ता भी ऐसी ही थी। परन्तु वह बाँझ थी। किसी भी उपायसे उसके पुत्र नहीं हुआ। एक दिन मौका देखकर जिनदत्ताने अपने स्वामीसे कहा—नाथ, पुत्रके विना कुलकी शोभा नहीं होती और वंशका उच्छेद हो जाता है। इस कारण संतान उत्पत्तिके लिए आपको दूसरा विवाह करना चाहिए। देखिए, नीतिकारने क्या अच्छा कहा है—

हाथीकी मदसे, सरोवरकी कमलोंसे, रात्रिकी पूर्ण चन्द्रमासे, वाणीकी व्याकरणसे, नदीकी हंस-हंसनियोंके जोड़ेसे, सभाकी पंडितोंसे, स्त्रियोंकी शीलसे, घोड़ेकी वेगसे दौड़नेसे, मन्दिरोंकी प्रति दिन होनेवाले उत्सवोंसे, पृथ्वीकी राजासे और तीनों लोकोंकी धर्मात्माओंसे जैसी शोभा होती है वैसी ही सुपुत्रसे कुलकी शोभा है। और भी कहा है—

शर्वरी दीपकश्चन्द्रः प्रभाते रविदीपकः।
त्रैलोक्यदीपको धर्मः सत्पुत्रः कुलदीपकः॥

अर्थात्—रात्रिका दीपक चन्द्रमा है, प्रातःकालका दीपक सूर्य है, तीनों लोकोंका दीपक धर्म है, और कुलका दीपक

सुपुत्र है। भावार्थ—जिस तरह चन्द्रमाके बिना रात्रिकी सूर्यके बिना प्रभातकी और धर्मके बिना तीनों लोकोंकी शोभा नहीं होती, उसी तरह सुपुत्रके बिना कुलकी भी शोभा नहीं होती। संसारमें परिभ्रमण करते हुए दुखी जीवोंको कविता, सज्जनोंकी संगति और सुपुत्र ये तीन ही वस्तुएँ सुखदायक हैं। अन्यमतवाले भी ऐसा ही कहते हैं कि बिना पुत्रवालेकी गति नहीं होती। यह सुनकर सेठने कहा—ये भोग-विलासादिक सब अनित्य हैं—विनाशीक हैं। जो भोगोंको भोगता है—अनुभव करता है, वह विवेकशून्य है। एक बात और भी है—मैं अब पूरे सत्तर वर्षका हो चुका, मेरा धर्मसाधनका समय है, यदि मैं ऐसी दशामें विवाह करलूँ तो लोग मेरी दिल्लगी उड़ायेंगे और इस अवस्थामें विवाह करना लोकविरुद्ध भी तो है। देखो, बीमार रहने पर शरीरमें आभूषण पहनना, आपत्ति या शोकके समय लोककी स्थितिका—रीति-रस्मोंका पालन करना, घरमें दरिद्रताका रहना, बुढ़ापेमें स्त्री-संगम करना, ये सब विरुद्ध बातें हैं और सब लोग जानते भी हैं, तौ भी मोहके वश होकर उन्हें यह सब करना पड़ता है। मोह बड़ा बलवान है। इसने सबको वशमें कर रक्खे हैं। मतलब यह कि मुझे अब भोग-विलासोंकी चाह नहीं, मैं अब विवाह नहीं करूँगा। सेठका ऐसा निश्चय देख जिन-दत्ताने कहा—नाथ, राग-मोहादिके वश होकर जो ऐसा करते हैं, उनकी लोकमें अवश्य हँसी होती है, पर पुत्रके

लिए तो ऐसा करनेमें दोष नहीं है। इस विवादमें सेठको हार माननी पड़ी। जैसे तैसे उन्होंने विवाह करना मंजूर किया।

इसी नगरमें जिनदत्ताके काकाकी लड़की कनकश्री रहती थी। जिनदत्ताने अपने काका और काकीसे अपने पति वृषभदासके लिए कनकश्रीकी मँगनी की। उत्तरमें उन दोनों- ने कहा—सौतके रहते हम अपनी लड़कीको नहीं दे सकते। तब जिनदत्ताने कहा—मेरी आप चिन्ता न करें, मैं तो सिर्फ भोजनके समय घर पर आया करूँगी और दिन रात जिन- मंदिरमें ही रहा करूँगी। मेरा घर-बारसे कोई वास्ता न रहेगा। कनकश्री ही घरकी मालकिन होकर रहेगी। मैं इस बातकी शपथ करती हूँ। बन्धुश्रीने तब जिनदत्ताकी बात मानली। शुभ मुहूर्तमें विवाह हो गया। अबसे जिनदत्ता जिनमंदिरमें और नवलवधू कनकश्री तथा वृषभदास सेठ घरमें सुखसे रहने लगे। एक दिन कनकश्री अपने मायके आई। तब उसकी माने उससे पूछा—पुत्री, अपने पतिके साथ तू सुखसे तो रहती है न? कनकश्री बोली—मां, मेरा पति तो मुझसे बातचीत भी नहीं करता और तो मैं क्या कहूँ? सौतके रहते हुए जब तूने मेरा विवाह कर दिया, फिर सुखकी बात क्या पूछती है? सिर मुड़ाकर नक्षत्र पूछनेसे क्या लाभ? मेरी सौत जिनदत्ताने मेरे पतिको सब तरह अपने पर लुभा रक्खा है। वे दोनों हर समय जिनमंदिरमें रहते हैं और वहीं पर आनन्द उड़ाते हैं। दोनों बार भोजन

करने घर आते हैं और फिर चले जाते हैं। मैं घरमें रातको अकेली ही पड़ी रहती हूँ। इसीसे दिनों दिन दुबली होती जाती हूँ। कनकश्रीने अपनी मांको मायाचारीसे ये सब झूठी बातें कह कर खूब भर दिया। बन्धुश्रीने तब कहा—देखो, रतिके समान सुन्दरी मेरी लड़कीको छोड़कर वह बूढ़ा उस बदसूरत बुढ़ियाके साथ भोग-विलास करता है। सच है कामी पुरुषको योग्य अयोग्यका विचार नहीं रहता। नीतिकारने ठीक कहा है—कवि लोग अपने काव्यमें क्या क्या नहीं कहते, योगियोंसे छुपा हुआ क्या है, विरुद्ध लोग अपने शत्रुके सम्बन्धमें क्या नहीं कहा करते, इसी तरह कामी जन भी क्या नहीं करते ? लेकिन आश्चर्य है कि उस बूढ़ेको ऐसा करनेमें लाज भी नहीं आती। यह सब कामदेवकी महिमा है जो बड़े बड़े साधु—सन्तोंकी भी वह विटम्बना कर डालता है। एक नीतिकारने क्या ही अच्छा कहा है—यह कामदेव कलामें प्रवीण मनुष्यको क्षण भरमें विकल कर डालता है, बड़ी भारी शुद्धतासे रहनेवालेको दिल्लगीहीमें उड़ा देता है, पंडितोंकी विटम्बना कर डालता है और धीरको अधीर बना देता है। इसके बाद बन्धुश्रीने अपनी लड़कीसे कहा—पुत्री, तू चिन्ता मत कर, जिस उपायसे तेरी सौत जिनदत्ता मरेगी मैं वही उपाय करूँगी। इस तरह बन्धुश्रीने अपनी लड़की कनकश्रीको समझा बुझाकर—संतोष देकर उसे पतिके घर भेज दिया और आप जिनदत्तासे वैर ठान कर बैठ रही। एक दिन बहु-

तसी स्त्रियोंको साथ लिये, शरीरमें हाड़के गहने पहिने, एक हाथमें त्रिशूल और एकमें डमरु लिये, पाँवोंमें नूपुर पहरे, महा भयंकर रूप धारण किये, एक कापालिक भिक्षाके लिए बन्धुश्रीके घर आया। उसे देखकर बन्धुश्री मनमें विचारने लगी— मैंने बहुतसे कापालिक देखे, पर इसके जैसा चमत्कारी तो आजतक कोई देखनेमें न आया। जरूर मेरा काम इससे सिद्ध होगा। ऐसा निश्चय कर उसने बड़े प्रेमसे अच्छे अच्छे पक्वान उसे भीखमें दिये। ग्रन्थकार कहते हैं—मनुष्य स्वार्थके वश दूसरोंकी सेवा करता है, पर वास्तवमें उसका सच्चा प्रेम किसीसे नहीं होता। गायमें जब दूध नहीं रहता तब उसका बछड़ा भी उसे छोड़ देता है। अस्तु, बन्धुश्री उस कापालिकको हर रोज उसी तरह भीख देने लगी। कापालिकने बन्धुश्रीकी भक्ति देखकर मनमें विचारा—यह मुझे मेरी माताके समान खिलाती-पिलाती है। मुझे जरूर इसका कुछ न कुछ उपकार करना चाहिए। संसारमें उत्पन्न करनेवाले, विवाह करनेवाले, विद्या पढ़ानेवाले, अन्न देनेवाले तथा भयसे रक्षा करनेवाले ये पाँचों माता पिताके समान हैं। इस प्रकार विचार कर एक दिन बन्धुश्रीसे उस कापालिकने कहा— माता, मुझे बहुतसी विद्याएँ सिद्ध हैं। अगर तुम्हारा कोई कार्य हो तो मुझसे कहिए। यह सुनकर बन्धुश्रीने रोते हुए अपना सारा हाल उससे कहकर अन्तमें कहा—जैसे बने वैसे तुम्हें जिनदत्ताको मार डालना चाहिए, जिससे

तुम्हारी बहिन सुखसे अपने घरमें रहने लगे। योगी बोला—माता, जरा धैर्य रखिए। किसीको मार डालना तो मेरे हाथोंका खेल है। मुझे इसका भय नहीं कि इससे जीवहिंसा होगी। तुम विश्वास करो कि मुझे जीवहिंसाका जरा भी भय नहीं है। कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको श्मशानमें विद्या सिद्ध करके मैं जिनदत्ताको मार डालूँगा। यदि न मारूँ तो खुद मैं ही आगमें जल मरूँगा। कापालिक जिनदत्ताके मारनेकी प्रतिज्ञा कर कृष्णचतुर्दशीको पूजाकी सब सामग्री लेकर मरघटमें पहुँचा। वहाँ उसने एक मरे हुए आदमीकी लाशके हाथमें तलवार बाँध कर उसकी पूजा की और मंत्र जपकर वेताली-विद्याकी आराधना की। वेताली-विद्या उस मृत शरीरमें प्रवेश कर प्रत्यक्ष हुई और बोली—कापालिक, मुझे आज्ञा दे। योगीने कहा—कनकश्रीकी सौत जिनदत्ता जिनमन्दिरमें बैठी है, उसे मार आ। 'तथास्तु' कह कर वह किलकारी मारती हुई वहाँ पहुँची जहाँ जिनदत्ता थी। लेकिन जिनेन्द्र भगवान्के माहात्म्य और सम्यग्दर्शनके प्रभावसे जिनदत्ता पर वेताली-विद्याका कुछ वश न चला। वह जिनदत्ताकी तीन प्रदक्षिणा देकर योगीके पास लौट आई। उसे देख कापालिक डर कर भाग गया और वह विद्या श्मशानमें ही पड़ी रही। इसी तरह कापालिकने तीन वार उसे जिनदत्ताको मारनेके लिए भेजा, पर वह तीनों वार लौट कर आ गई। चौथी वार अपने मरणके भयसे उसने वेतालीसे कहा—तो मा, उन दोनोंमें

जो दुष्टा हो, उसीको तू मार डाल। यह कह कर उसने उसे भेज दिया। योगीकी बात सुनकर वेताली-विद्या वहाँसे चली और अपने घरमें अकेली सोती हुई कनकश्रीको मारकर और लोहू-लुहान तलवार लिये मरघटमें योगीके पास आई। योगीने उसे विदा किया। विद्या अपने स्थानको चली गई और योगी भी अपने स्थानको चला गया।

सवेरा हुआ। बन्धुश्री प्रसन्न होती हुई अपनी लड़कीकेघर पर आई और खाट पर लड़कीका कटा सिर देखकर चिल्लाती हुई राजाके पास दौड़ी जाकर उसने राजासे कहा—महाराज, जिनदत्ताने सपत्नीके द्वेषसे मेरी लड़कीको मारडाला। इस बात-को सुनकर राजाको बड़ा क्रोध आया। क्रोधमें आकर उसने वृषभदास सेठ और जिनदत्ताको पकड़नेके लिए तथा घरकी कोई वस्तु इधर उधर न होने पावे, इस बातकी रखवालीके लिए सिपाहियोंको भेजा। वे उन दोनोंको पकड़नेके लिए आये तो, लेकिन नगरदेवताने उनको जहाँका तहाँ कील दिया। यह बात सेठ और जिनदत्ताने सुनी तो उन दोनोंने विचारा—पूर्व जन्ममें जिसने जो कर्म उपार्जन किये हैं वे बिना भोगे मेटे नहीं जा सकते। जिस स्थानमें, जिस दिन, जिस समय, जिस मुहूर्तमें जो होना होता है वह हो ही कर रहता है। इसमें फेर नहीं पड़ता। ऐसा विचार कर दोनोंने निश्चय किया कि जब तक यह उपसर्ग दूर न होगा तबतक हम जिनालयहीमें रहेंगे।

इसी बीचमें नगरदेवताने उस कापालिकसे प्रेरणा की कि तू नगरमें जाकर सच सच बात कह। तब वह नगरके लोगोंसे कहने लगा–जिनदत्ताका कोई अपराध नहीं है। बन्धुश्रीके कहनेसे मेरी वेतालीविद्याने कनकश्रीको मारा है।

इधर नगरदेवताने वेतालीविद्याको भी खूब ताड़ना की। तब उसने बुढ़ियाका रूप बनाकर कहना आरंभ किया—जिनदत्ता निर्दोष है, कनकश्री ही पापिनी थी; इसलिए मैंने उसे मार डाला। यह सुनकर नगरके लोग कहने लगे—अहा, यह जिनदत्ता बड़ी ही साध्वी और निर्दोष स्त्री है। इसी समय देवोंने उसपर पंचाश्चर्य किये। यह सब देखकर राजाने कहा—बन्धुश्री दुष्ट है, उसे गधे पर चढ़ाकर नगरसे निकाल बाहिर करो! बन्धुश्रीने तब गिड़गिड़ा कर कहा–महाराज, मैंने यह सब अज्ञानसे किया है। मुझे इसका प्रायश्चित्त दिलवा दीजिए।

राजाने कहा—इस दोषका मैंने कहीं प्रायश्चित्त ही नहीं सुना। नीतिकारने कहा है—मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री-हत्या करनेवाले तथा चुगलखोर इन चारोंका प्रायश्चित नहीं होता। यह कहकर राजाने उसे गधे पर बैठाकर नगरसे निकलवा दिया। बन्धुश्री तब विचारने लगी—आश्चर्य है, किये हुए पुण्य-पापका फल यहीं पर और बहुत जल्दी मिल जाता है। आचार्योंने भी कहा है—तीव्र पुण्य अथवा पापका फल तीन वर्षमें, या तीन महीनेमें, या तीन पक्षमें अथवा तीन दिनमें मनुष्यको शीघ्र मिल जाता है।

इसके बाद राजाने मनमें विचारा—जिनधर्मको छोड़ कर दूसरे धर्ममें इतना चमत्कार नहीं है-ऐसी महिमा नहीं है—ऐसा प्रभाव नहीं है। ऐसा निश्चय करके वह जिनमंदिरमें गया और वहाँ समाधिगुप्ति मुनिको तथा वृषभदास और जिन दत्ताको नमस्कार कर बैठ गया। मुनिराजसे उसने प्रार्थना की-प्रभो, धर्मके प्रभावसे वृषभदास और जिनदत्ताका उपसर्ग आज दूर हुआ। मुनिराज बोले—राजन्, धर्मके प्रभावसे सब मनोरथोंकी सिद्धि होती है। संसारमें धर्मके सिवा सब अनित्य है। इसलिए धर्म साधन सदा करते रहना चाहिए। देखिए, धन तो पैरोंकी धूलके समान है, जवानी पर्वतमें बहनेवाली नदीके वेग समान है, मनुष्यत्व जलबिन्दुके समान चंचल है, और यह जीवन फेनके समान क्षण-विनाशीक है। ऐसी-दशामें जो मनुष्य स्थिरमन होकर धर्म नहीं करते वे बुढ़ापेमें केवल पश्चात्ताप ही करते हैं और शोक रूपी अग्निसे जला करते हैं। राजाने पूछा—प्रभो, वह धर्म किस प्रकार है? मुनि महाराजने कहा—यदि तुम सच्चा सुख चाहते हो, तो प्राणियोंकी हिंसा मत करो, पराई स्त्रीका संग छोड़ो परिग्रहका परिमाण करो और रागादिक दोषोंको छोड़कर जैनधर्ममें प्रीति करो-उसमें दृढ़ श्रद्धान करो। इस धर्मोपदेशको सुनकर संग्रामशूरने अपने पुत्र सिंहशूरको राज्य सौंपकर मुनिराजके पास दीक्षा ग्रहण करली। उस समय वृषभदास सेठ और जिनदत्ताने तथा और और लोगोंने भी दीक्षा ग्रहण की। अन्तमें मुनि-

ने कहा—संसारके सब पदार्थोंमें भय है, एक वैराग्य ही अभय है। तुम लोगोंने दीक्षा लेकर बड़ा ही अच्छा किया। देखो, भोगोंमें रोगका भय है, सुखमें उसके विनाश होनेका भय है, धन रहने पर राजा और चोरका भय है, अगर मनुष्य नौकर होकर रहे तो उसे मालिकका डर रहता है, विजय हो जाने पर भी शत्रुका भय है, कुलमें दुष्टा—व्यभिचारिणी स्त्रीके होनेका भय है और किसी तरहसे मान-मर्यादा बढ़ जाय तो उसके घटनेका डर है, गुणोंमें दुष्टोंका भय और देहमें यमराजका भय है। मतलब यह कि भय सबमें है, पर एक वैराग्य ही ऐसा है, जो भयसे सर्वथा परे है।

इस कथाको सुनाकर अर्हद्दासकी स्त्री मित्रश्रीने कहा—नाथ, मैंने यह सब प्रत्यक्ष देखा है। इसीसे मुझे दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—प्रिये तूने जो देखा है, उस पर मैं विश्वास करता हूँ, उसको चाहता हूँ और उसमें रुचि करता हूँ। सेठकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर सेठकी छोटी स्त्री कुन्दलताने कहा—यह सब झूठ है। मैं इस पर श्रद्धान नहीं कर सकती। राजाने, मंत्रीने और बड़के वृक्ष पर छुपे हुए चोरने कुन्दलताकी बात सुनी। राजाने मनमें विचारा—यह कैसी पापिनी है जो सत्यको भी असत्य कह रही है। सवेरे ही इसे गधे पर चढ़ाकर निकाल शहर बाहर करूँगा। चोरने अपने मनमें विचारा—दुर्जन गुणोंको छोड़कर दोषोंको ही ग्रहण करता है। निति-

कारोंने यह ठीक कहा है—अविवेकी मनुष्य गुणको ग्रहण न कर दोषोंको ग्रहण करते हैं। स्तनों पर लगी हुई जौंक दूधको न पीकर खूनको पीती है। यह उसका स्वभाव ही है।

३—चन्दनश्रीकी कथा।

इसके बाद अर्हद्दास सेठने अपनी दूसरी स्त्री चन्दनश्रीसे कहा—प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वके प्राप्तिका कारण बतलाओ। चन्दनश्री तब यों कहने लगी—

कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नामका एक नगर है। वहाँके राजाका नाम भूभाग था। उसकी रानीका नाम भोगावती था। गुणपाल नगरसेठ था। यह सेठ बड़ा धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि था। इसकी स्त्रीका नाम गुणवती था। इसी नगरमें सोमदत्त नामका एक ब्राह्मण रहता था। पर वह बड़ा ही दरिद्री था। इसकी स्त्रीका नाम सोमिला था। यह बड़ी सती थी। इसके एक लड़की थी। उसका नाम सोमा था। एक दिन सोमिलाको बड़े जोरका बुखार आया और वह उसी बुखारसें मर भी गई। इसके मरनेसे ब्राह्मणको बहुत दुःख हुआ। एक दिन एक मुनिसे ब्राह्मणका साक्षात्कार

हो गया। मुनिने इसकी दशा देखकर इससे कहा—प्रिय, तू क्यों इतना दुखी हो रहा है? ब्राह्मणने अपनी सारी दुःख कहानी मुनिराजसे कही। मुनि कहने लगे—भाई, जो पैदा होता है वह जरूर मरता है। बहुत प्रयत्न करने पर भी यह पापी काल किसीको नहीं छोड़ता। सबको अपना ग्रास बना लेता है। इस लोक और परलोकमें केवल एक धर्म ही हितकारी है और कोई नहीं। इस प्रकार मुनिके धर्मोपदेशसे ब्राह्मण शान्त हुआ। उसने श्रावकके व्रत लिये। अबसे यथाशक्ति वह दान, पूजादि पुण्य-कर्म करने लगा। आचार्य कहते हैं—थोड़ेसे थोड़ा भी दान देना अच्छा है। यह इच्छा करना ठीक नहीं कि जब हमारे पास बहुतसा इच्छित धन हो, तब ही हम कुछ करें। क्योंकि इच्छाके अनुसार कब किसको क्या मिला है? मनुष्यकी इच्छाओंकी पूर्ति तो कभी हो ही नहीं सकती। इसीसे सोमदत्त दरिद्री होकर भी प्रतिदिन थोड़ा बहुत दान देता रहता था। एक दिन नगरसेठ गुणपाल उसे दरिद्र और गरीब श्रावक समझ कर अपने घर लाया और उसने उसका अच्छी तरह आदर-सत्कार किया। अबसे गुणपालने उसके निर्वाहका सब तरह उचित प्रबन्ध कर दिया। ग्रन्थकार कहते हैं—महापुरुषोंके संसर्गसे कौन मनुष्य गुणी और पूज्य नहीं होता? मुनिके उपदेशसे ब्राह्मणको धर्म लाभ हुआ। वह गुणवान बना। सेठने उसके गुणोंकी परीक्षा कर उसे आश्रय दिया। सच है—गुणी पुरुषोंको ही गुणोंकी परीक्षा होती है।

मूर्खोंके सामने तो गुण भी दोष हो जाते हैं। देखो न, नदियोंका पानी कैसा मीठा होता है, पर समुद्रमें मिलनेसे वही खारा हो जाता है—पीने योग्य नहीं रहता। महा पुरुषोंकी संगतिसे सब कोई ऊँचा पद लाभ कर सकता है। जब गलियोंका पानी गंगाजीमें मिल जाता है तो देवता लोग भी उसे अपने माथे पर चढ़ाने लगते हैं।

एक दिन सोमदत्तने अपनी मृत्युका समय निकट जान कर गुणपालको पास बुलाकर कहा—आपकी सहायतासे मैंने कोई दुःख नहीं जाना। अब मेरा मरण समय आगया है, इसलिए मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मेरी इस लड़कीको श्रावक व्रतधारी ब्राह्मणको छोड़कर और किसीको न दीजिएगा। यह कह कर सोमाको उसने गुणपालके हवाले कर दिया और आप समाधिमरणसे प्राणोंको त्याग कर स्वर्ग गया। ग्रन्थकार कहते हैं—विद्या, धन, तप, शूरता, उच्च कुल, नीरोगता, राज्य और स्वर्ग तथा मोक्ष, यह सब धर्महीसे प्राप्त होते हैं।

सोमदत्तके मरे बाद गुणपाल सेठ सोमाको पुत्रीकी तरह पालने लगा। उसी नगरमें रुद्रदत्त नामका एक धूर्त ब्राह्मण रहता था। वह रोज जूआ खेला करता था। एक दिन किसी कामसे सोमा रास्तेमें जा रही थी। जुआरी रुद्रदत्तकी उस पर नजर जा पड़ी। रुद्रदत्तने लोगोंसे पूछा—यह किसकी लड़की है? उनमेंसे किसीने कहा—यह सोमदत्त

ब्राह्मणकी लड़की है। उसने मरते समय इसे गुणपाल सेठके हवाले किया है। तबहीसे गुणपाल इसे पुत्रीके समान पालता है। रुद्रदत्त तब कहने लगा—इसके साथ तो मैं विवाह करूँगा। उन लोगोंने कहा—तू बड़ा ही मूर्ख है जो बे-सिर पैरकी बातें कह रहा है।

बड़े बड़े दीक्षित और चतुर्वेदी ब्राह्मण तो इसके लिए-मँगनी कर-करके लौट गये, उनके साथ तो सेठने सोमाका विवाह किया ही नहीं और तुझसे जुआरी—व्यसनीके साथ वह सोमाको व्याह देगा? असंभव है। गुणपाल जैनीको छोड़कर सोमाका विवाह और किसीसे न करेगा। उन लोगोंकी बातें सुनकर रुद्रदत्तने बड़े घमंडसे कहा—मेरी बुद्धिका चमत्कार तो जरा आप लोग देखते रहिए कि मैं क्या क्या करता हूँ। आप विश्वास करें कि मैं ही इसके साथ विवाह करूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके रुद्रदत्त परदेश चला गया। वहाँ पर कपटसे किसी मुनिके पास वह ब्रह्मचारी बन गया और ब्रह्मचारीके सब क्रिया-कर्म सीख कर उसी नगरमें गुणपाल सेठके जिनालयमें आकर ठहर गया। इस नये ब्रह्मचारीका आगमन सुनकर गुणपाल सेठ मंदिरमें आया और इच्छाकार करके उसके पास बैठ गया। ब्रह्मचारीने "दर्शनविशुद्धिरस्तु" ऐसा कह कर आशीर्वाद दिया। इसके बाद सेठने कहा—आप किनके शिष्य हैं? यहाँ आपका आगमन कैसे हुआ? ब्रह्मचारीने कहा—आठ आठ उपवास

करने वाले जिनचन्द्र भट्टारकका मैं शिष्य हूँ। पूर्व देशमें परिभ्रमण करके, वहाँ भगवान्के पाँचों कल्याणोंकी भूमियोंकी वन्दना कर अब शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ भगवान्के जन्मस्थानके दर्शन करने आया हूँ। यह सुनकर सेठने कहा—वह नर धन्य है जिसके दिन धर्मध्यानमें बीतते हैं। इसके बाद सेठने उससे पूछा—आपकी जन्मभूमि कहाँ है ? ब्रह्मचारीने कहा—इसी नगरमें सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमिला था। मैं उन्हींका इकलौता लड़का हूँ। अपने माता पिताकी मृत्युसे मुझे बहुत दुःख हुआ। उसी दुःखके मारे मैं तीर्थयात्राको निकल गया। काशीमें जिनचन्द्र भट्टारकने मुझे धर्मोपदेश दिया। उनके उपदेशसे मैं ब्रह्मचारी हो गया।

सेठजी, गोत्र और देशसे क्या प्रयोजन ? यह सब तो विनाशीक हैं। मुझे तो एक धर्म ही शरण है, जिससे सब सिद्धि होती है। धर्मकी महिमा तो देखिए, कि जिसके प्रभावसे धन चाहनेवालोंको धन-प्राप्ति, काम-पुरुषार्थके चाहनेवालोंको काम-पुरुषार्थकी प्राप्ति, सौभाग्यके अभिलाषियोंको सौभाग्य-प्राप्ति, पुत्र वांछकोंको पुत्र-प्राप्ति, तथा राज्य चाहनेवालोंको राज्य-प्राप्ति होती है। अर्थात् धर्मात्मा पुरुष जो कुछ भी चाहे उसे उसकी प्राप्ति अवश्य होती है। स्वर्ग और मोक्ष भी जब धर्म-प्रभावसे मिल सकता है तब और वस्तुओंकी तो बातही क्या है। इस प्रकार ब्रह्मचारीने धर्मकी बड़ी महिमा गाई। उसकी

इन बातोंसे सेठने उसे धर्मात्मा समझ पूछा—आपने जन्म-भरके लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया है या कुछ समयके लिए? ब्रह्मचारीने कहा—यद्यपि मैंने ब्रह्मचर्य-व्रत कुछ ही समय-तकके लिए लिया है, तथापि मेरी रुचि स्त्रियोंमें नहीं है। क्योंकि स्त्रियाँ भयंकर विषके समान होती हैं।

देखिए, महादेवके गलेमें कालकूट विष भरा है, पर महादेव उससे विचलित नहीं हुए; लेकिन स्त्रीसे उन्हें भी विच-लित हो जाना पड़ा। इसीलिए कहते हैं—स्त्रियाँ विषसे भी बढ़कर विष है। यह सुनकर सेठने कहा—मेरे घरमें एक ब्राह्मणकी लड़की है। आप उसके साथ विवाह करें तो अच्छा हो। आप श्रावक हैं, इसलिए मैं आपके साथ उसको ब्याह दूँगा। सेठकी बात सुनकर ब्रह्मचारी बोला—विवाह करनेसे मनुष्यको संसारमें फँसना पड़ता है, इसलिए मैं विवाह नहीं करता—मुझे ब्याहसे मतलब नहीं। एक और भी बात है, यदि मैं विवाह करलूँ तो जो कुछ मैंने लिखा-पढ़ा है वह सब स्त्रीके सम्पर्कसे चला जायगा। क्योंकि स्त्रीके सेवनसे सिद्ध अंजन, मंत्र, तंत्र, कला-कौशल आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं।

निदान सेठने बड़े आग्रहसे ब्रह्मचारीका सोमाके साथ विवाह कर दिया। विवाहके बाद दूसरे दिन ही रुद्रदत्त विवाह-कंकन पहिने जूआखानेमें पहुँचा और अपने साथी जुआरियोंसे कहने लगा—मैंने जो तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा की थी आज वह पूरी होगई। मैंने सोमाके साथ विवाह कर

लिया। यह सुनकर साथियोंने उसे बड़ी शाबासी दी। रुद्रदत्त सोमाके साथ ब्याह करके भी अपनी पहली स्त्री कामलताके पास, जो एक वैश्या थी, जाने-आने लगा। कामलता वसुमित्रा कुटिनीकी लड़की थी। रुद्रदत्तका वृतान्त सुनकर सोमाने दुखित होकर कहा—यह मेरे कर्मोंका फल है। जो कर्म मैंने उपार्जन किये हैं वे विना फल दिये नहीं छूट सकते। गुणपाल उसे दुखी देखकर बोला—पुत्री, अब बीती बात पर दुःख करना व्यर्थ है। यह कलियुग है, इसमें जो न हो, सो थोड़ा है। देख, चन्द्रमामें कलंक, कमलनालमें काँटे, समुद्रका पानी खारा, पंडितोंमें निर्धनता, इष्टजनका वियोग, सुन्दरतामें ऐब, धनिकोंमें कृपणता, और रत्नोंमें दोप, इत्यादि बातोंका होना यह कालका स्वभाव ही है। शुभ कार्योंमें बड़े बड़े पुरुषोंको विघ्न-बाधाएँ आ जाती हैं; लेकिन जब दुष्ट लोग अन्यायमें प्रवृत्त होते हैं तब न जाने वे विघ्न-बाधाएँ कहाँ चली जाती हैं? यह सुनकर सोमा बोली—पिताजी, मेरे मनमें इस बातका जरा भी दुःख नहीं है कि यह विपत्ति मुझ पर क्यों आई। जुआरियोंका तो ऐसा स्वभाव ही होता है। नीतिकारोंने भी ऐसा ही कहा है—चोरमें सत्य नहीं होता, शूद्रमें पवित्रता नहीं होती, मदिरा पीनेवालोंमें हृदयकी पवित्रता नहीं होती, पर जुआरियोंमें ये तीनों बातें नहीं होतीं।

दुष्ट मनुष्योंमें यह कुलीन है, यह गुणवान है, ऐसा समझकर विश्वास नहीं करना चाहिए। मलयगिरिके चन्दनकी

ही क्यों न हो, पर अग्नि तो जलावेगी ही। यह सुनकर सेठने कहा—पुत्री, मेरी अज्ञानतासे जो हो गया उसे तुम्हें सहलेना चाहिए। इस तरह समझा कर सेठने सोमाको बहुतसा धन देकर कहा—तुझे अबसे खूब दान-पूजादिक पुण्य-कर्म करना चाहिए, जिससे उत्तम गतिकी प्राप्ति हो। दान देनेसे मनुष्य गौरवको प्राप्त होता है, धनके संग्रहसे नहीं। देख, मेघ ऊँचे हैं और समुद्र नीचे है, पर समुद्र संग्रही है और मेघ दानी है, इसलिये समुद्रसे मेघकी प्रतिष्ठा अधिक है। धनका फल दान है, शास्त्रका फल शांति है, हाथोंका फल देवोंकी पूजा करना है, क्रियाका फल धर्म और दूसरोंके दुःखोंको मिटाना है, जीवनका फल सुख है, वाणीका फल सत्य है, संसारका फल सुख-परम्पराकी वृद्धि है और प्रभाव तथा भव्योंकी बुद्धिका फल संसारमें शान्तिलाभ करना है। इस प्रकार सेठने सोमा-को खूब समझा कर बहुत सन्तोष दिया। सोमाने उस धनसे एक विशाल जिनमंदिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा कराई। प्रतिष्ठाके बाद चौथे दिन उसने मुनि और आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंका यथाशक्ति आदर-सत्कार किया। इसी अवसर पर शहरके और और लोग तथा वसुमित्रा, कामलता, रुद्रदत्त आदिको भी निमन्त्रण दिया गया। यथाशक्ति उनका आदर-सत्कार किया गया। यह सच है कि सज्जन मनुष्य निर्गुणियों पर भी दया ही करते हैं। चन्द्रमा चांडालके घर परसे अपनी चांदनीको नहीं हटाता। जब वसुमित्रा सोमाके

घर आई और उसने सोमाका रूप देखा, तो उसका सिर घूमने लगा। वह मनमें कहने लगी—सोमा इतनी सुन्दरी है। यदि रुद्रदत्त इस पर मोहित हो गया तब तो हमारा जीवन निर्वाह ही कठिन हो जायगा। इसलिए इसे किसी तरह मार डालना ही उचित है। ऐसा निश्चय कर उस कुटिनीने एक घड़ेमें नीचे तो एक भयंकर काले साँपको रक्खा और ऊपरसे उसमें फूल भरकर उसे सोमाके हाथमें दे कर कहा—पुत्री, इन फूलोंसे तू देवपूजा करना। सोमाने फूलोंको लेनेके लिए घड़ेमें हाथ डाला, पर क्या आश्चर्य है कि उसके पुण्यप्रभावसे साँपकी जगह फूलोंकी माला बन गई। यह देख कुटिनीको संदेह हुआ कि मैंने न जाने घड़ेमें साँप रक्खा या नहीं। उसे इसका बड़ा आश्चर्य हुआ। सब संघको जिमाकर सोमाने वसुमित्रा, कामलता और रुद्रदत्तको भी बड़े आदरसे जिमाया और उन्हें वस्त्राभूषण दिये। अन्तमें जाते समय उसने कामलताको आशीर्वाद देकर वह माला उसके गलेमें डाल दी। देखते देखते उस मालाका सर्प होकर उसने कामलताको डस लिया। वह मूर्च्छा खाकर जमीनपर गिर पड़ी। यह देख कुटिनीने हल्ला मचाया और साँपको घड़ेमें रखकर वह राजाके पास दौड़ी हुई पहुँची। राजासे उसने कहा—महाराज, गुणपालकी लड़की सोमाने मेरी लड़की कामलताको मारडाला। यह सुनकर राजाको बड़ा क्रोध आया। सोमा बुलवाई गई। वह आई। राजाने उससे पूछा—बिना कारण तूने कामलताको क्यों मारडाला? सोमाने कहा—

महाराज, मैंने नहीं मारा। मैं जैनधर्मावलम्बिनी हूँ और जैनधर्म दयामय है। जीवहिंसासे नरकोंमें दुःख और जीव रक्षासे स्वर्ग-सुख मिलता है। इसलिए सुखाभिलाषी जीव-हिंसा कभी नहीं करते। यह बात सब जानते हैं कि पापसे दुःख और धर्मसे सुख होता है। इसलिए सुख चाहनेवा-लोंको पाप छोड़ कर धर्म ही करना चाहिए। इस प्रकार धर्मकी थोड़ीसी व्याख्या कर सोमाने पहलेका सब वृत्तान्त राजासे कह सुनाया। कुटिनीसे न रहा गया सो उसने घड़ेकी ओर इशारा करके राजासे कहा—कि इसमें सर्प है। सोमाने सब लोगोंके सामने हाथ डाल कर साँपको बाहर खींच लिया। साँप फिर माला हो गया।

और जब कुटिनीने उसे हाथमें लिया तो वह फिर साँप हो गया। कई बार ऐसा ही हुआ। लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब कुटिनीने कहा—यदि मेरी लड़की फिरसे जीवित हो जाय तो मैं कह सकती हूँ कि सोमा शुद्ध है, निर्दोषी है। अन्यथा नहीं। यह सुनकर सोमाने शुद्ध हृदयसे जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति की, और उन्हें हृदयमें धारण कर अपना हाथ कमलताके शरीर पर लगाया। आश्चर्य है कि उसके हाथ लगाते ही कामलताका विष तत्काल दूर हो गया। कामलता मूर्च्छा छोड़ उठ बैठी। ग्रन्थकार कहते हैं—जिनेन्द्र भगवान्‌का स्तवन करनेसे विघ्नोंका नाश होता है, डाकिनी, भूत-पिशाच और सर्पादिक भाग जाते हैं तथा विष उतर जाता है। तब

राजाने कामलताको अभय दान देकर उसकी माता कुटिनीसे पूछा—यह क्या बात है ? मेरे सामने तूने झूठ क्यों कहा ? कुटिनी बोली—महाराज, यह सब मेरा ही चरित्र है। झसे अपराध हो गया। मुझे क्षमा कीजिए। राजाने उसे भी क्षमा कर दिया।

इधर धर्मका प्रभाव देख कर लोगोंने सोमाकी पूजा की, देवोंने पंचाश्चर्य किये। लोग कहने लगे—सच है धर्मके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है।

इधर महाराज भूभाग और गुणपाल सेठने तथा और कई लोगोंने जिनचन्द्र भट्टारकसे दीक्षा ग्रहण की। किसी किसीने श्रावकके व्रत लिये तथा किसीने अपने परिणामोंको ही सुधारा। और महारानी भोगावती, गुणपालकी स्त्री गुणवती, सोमा तथा और कितनी स्त्रियोंने भी श्रीमती आर्यिकाके पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। रुद्रदत्त वसुमित्रा और कामलता आदिने श्रावकोंके व्रत लिये।

यह कथा सुनाकर चन्दनश्रीने कहा—नाथ, मैंने यह सब वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा है, इस कारण मुझे दृढ़ सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—जो तुमने देखा उसका मैं श्रद्धान करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उस पर रुचि--प्रेम करता हूँ। अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। लेकिन उन सबमें छोटी कुंदलता यही बोली—यह सब झूठ है। राजा, मंत्री और चोर अपने अपने मनमें विचारने लगे—कुंदलता पापिनी

है जो चन्दनश्रीकी प्रत्यक्ष देखी हुई बातको भी झूठी बतला रही है। राजाने कहा—सवेरे ही इसको गधे पर चढ़ाकर निकाल शहर बाहर करूंगा। चोरने सोचा—निन्दकोंका ऐसा स्वभाव ही होता है जो दूसरोंके झूठे दोषोंको कहता है और सज्जनोंके सच्चे गुणोंको कभी नहीं कहता। वह पापी है और निन्दक है। किसीके यशका लोप करना प्राणवधसे भी बढ़कर है।

४—विष्णुश्रीकी कथा।
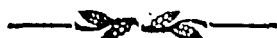
(च)न्दनश्रीकी कथा सुनकर अर्हद्दासने विष्णुश्रीसे कहा—प्रिये, अब तुमभी अपने सम्यक्त्वका कारण बतलाओ। विष्णुश्रीने तब यों कहना शुरू किया भरतक्षेत्रके वत्स नामक देशमें कौशाम्बी नगरी है। कौशाम्बीके राजाका नाम अजितंजय था। सुप्रभा अजितंजयकी रानी थी। राजमंत्रीका नाम सोमशर्मा था। सोमा इसकी स्त्री थी। सोमशर्मा दान करता पर कुपात्रोंको। एक बार कौशाम्बीमें समाधिगुप्त मुनिराज आये। वे गाँव बाहर उपवनमें एक मासके उपवासका नियम लेकर ध्यानमें बैठ गये। मुनिराजके आगमनसे उपवनकी बड़ी शोभा हो गई। आम, अशोक, बकुल, खजूर, आदिके

जो वृक्ष सूख गये थे, उनमें फल-फूल-पत्ते आगये। वे हरे-भरे हो गये। डालियोंमें नये नये अंकुर फूट उठे। जिन बावड़ियोंमें पानी और कमल सूख गये थे, उनमें पानी भर गया, कमल फूल उठे। हंस और मोर खेलने लगे। कोयलें मधुर मधुर गाने लगी। जुही, चमेली, पारिजात, चंपा, मालती, कमलिनी आदि विकसित हो गई। उनकी सुगन्धके मारे भौंरे उन पर आ-आकर गुन गुन करने लगे। पक्षीगण मधुर मनोहारी गान करने लगे।

इसी उपवनमें मुनिराज विराजमान थे। मुनियोंमें जो गुण होने चाहिएँ, जैसे—देहमें निर्ममता, गुरुमें विनय, निरन्तर शास्त्रोंका अभ्यास, निर्दोष चारित्र, परमशान्ति, संसारसे विरक्ति और अन्तरंग परिग्रह—मिथ्यात्व, वेद, हास्य, रति,अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान,माया, लोभ, राग, द्वेष और बाह्यपरिग्रह-जमीन, घर, धन, धान्य, नौकर, चौपाये, गाड़ी, शय्या, आसन, बर्तन वगैरह-का त्याग, धर्मसम्बन्धी ज्ञान और परोपकारिता, वे सब इनमें विद्यमान थे। इनका मासिक योग जब पूरा हुआ तब ये आहारके लिये कौशाम्बीमें आये। यद्यपि सोमशर्मा कुपात्रोंको दान देता था, पर उसमें दाताके—श्रद्धा, शक्ति, अलोभ, दया, भक्ति, क्षमा और ज्ञान, ये सात गुण थे। तथा पड़गाहना, ऊँचे स्थान पर बैठाना, पादोदक लेना, पूजा करना, प्रणाम करना, मन-वचन-कायकी शुद्धि और शुद्ध आहार देना, ये नवधा भक्ति

भी थी। मुनिको आहारके निमित्त आया देखकर सोमशर्माने उन्हें पड़गाया और पवित्र आहार देकर वह उल्हाससे बोला—आज मैं धन्य हुआ। मैंने आज साक्षात् तीर्थंकर भगवान्का दर्शन किया, पूजा की। क्योंकि इस वर्तमान कलियुगमें त्रिलोककी रक्षा करनेवाले केवली भगवान् तो हैं नहीं, किन्तु जगत्को प्रकाशित करनेवाली उनकी वाणी—उनका सदुपदेश इस भारतवर्षमें अवश्य विद्यमान है। उस वाणीके आधार इस समय रत्नत्रय धारी मुनिराज हैं। इसलिए इन मुनियोंकी और जिनवाणीकी पूजा करनेवालेने साक्षात् जिन भगवान्की ही पूजा की कहना चाहिए। इस आहारदानके प्रभावसे मंत्रीके घरमें देवोंने पंचाश्चर्य किये। इस अतिशयको देखकर मंत्री अपने मनमें विचारने लगा—अन्यमतमें जो जो दान कहे गये, जैसे—सुवर्ण, तिल, हाथी, रथ, दासी, जमीन, घर, कन्या, गौ, आदि इन सब दानोंको मैंने दिया, वह भी किसी ऐसे वैसेको नहीं, किन्तु दीक्षित, अग्निहोत्री, श्रोत्रिय, त्रिपाठी, धर्मकथक, भागवत, तपस्वी, आदिको, पर उन दानोंका फल मैंने कुछ नहीं देखा। ऐसा विचार कर मंत्री सन्ध्या समय उपवनमें मुनिराजके पास गया। विधिपूर्वक उनकी वन्दना कर उसने पूछा—भगवन्, दीक्षित आदि ब्राह्मणोंको मैंने खूब दान किया, पर मुझे उसका कुछ फल न मिला। इसका क्या कारण? मुनिराजने कहा—भाई, वे लोग कुपात्र हैं। दान देने योग्य नहीं। उनके विचार मलिन

रहते हैं। वे आर्तध्यानी होते हैं। इसलिए वे दानके पात्र नहीं; किन्तु दानका पात्र वह है, जो स्वयं निर्दोष मार्गमें चलता हो और निरपेक्ष भावसे दूसरोंको चलाता हो, तथा जो स्वयं संसारसे पार होना जानता हो और दूसरोंको भी पार कर सकता हो। ऐसे ही गुरुओंकी सेवा करनी चाहिए और ऐसे ही सत्पात्रोंको दान देना चाहिए। तथा बन्ध-मोक्षका स्वरूप बतलानेवाले सत्य ज्ञानकी और रागद्वेष रहित सच्चे देवोंकी सेवा करनी चाहिए। ऐसा करनेवाला ही स्वर्ग और मोक्षका पात्र है। दान योग्य तीन प्रकारके पात्र हैं। वे उत्तमपात्र, मध्यमपात्र और जघन्यपात्र। उनमें उत्तमपात्र तो मुनि हैं, मध्यमपात्र अणुव्रती श्रावक और जघन्यपात्र अविरत-सम्यग्दृष्टि हैं। और व्रत संयुक्त होकर जो सम्यक्त्व रहित हैं, वे कुपात्र हैं, और जो इन दोनोंसे रहित हैं वे साक्षात् नरकके पात्र हैं। इन तीनों पात्रोंको अभयदान देनेसे दाताको कहीं भय नहीं रहता। आहारदान देनेसे भोगोंकी प्राप्ति होती है; औषधदानसे नीरोगता होती है तथा शास्त्रदानका दाता श्रुतकेवली होता है। लेकिन जो कुपात्रोंको दान देता है वह अपना और उस कुपात्रका भी नाश करता है। जैसा कि कहा है—राखमें होम करनेकी तरह कुपात्रको दान देना व्यर्थ है। जैसे साँपको दूध पिलानेसे वह विष बन जाता है, वैसे कुपात्रको दान देना दाताके लिए विषके

समान है। जैसे ऊसर जमीनमें बोया हुआ बीज निष्फल है, उसी तरह कुपात्रको दान देना भी निष्फल है। एक बावड़ीका पानी गन्नेमें अगर पहुँच जाता है तो वह मीठा हो जाता है और यदि वही पानी नीममें पहुँच जाय तो कडुवा हो जाता है। यही दशा पात्रदान और कुपात्रदानकी है। मंत्रीने मुनिके उपदेशको बड़े ध्यानसे सुना और फिर पूछा—मुनिराज, आपको दान देनेसे मैंने जैसा फल पाया है और लोगोंने भी मुनियोंको दान देकर वैसा फल पाया है या नहीं? मुनिराजने कहा—दक्षिणदेशमें वेनातट नामका नगर है। उसमें सोमप्रभ राजा था। सोमप्रभा उसकी रानी थी। यह राजा ब्राह्मणोंका बड़ा भक्त था। ब्राह्मणोंके सिवाय और कोई जगत्‌का तारक हो ही नहीं सकता, यह उसका सिद्धान्त था। उसका यह भी निश्चय था कि गौ, ब्राह्मण, वेद, सती, सत्यवादी, दान और शील इन सातोंहीसे जगत्‌की शोभा है।

एक वार राजाने अपने मनमें विचारा—मैंने धन तो बहुतसा उपार्जन किया, पर अब इसके द्वारा कुछ दान-पुण्य भी कर लेना चाहिए। अन्यथा इसका नाश तो होगा ही। क्योंकि दान, भोग और नाश धनकी ये तीन ही गति हैं। जो न देता है, न भोगता है उसके धनकी तीसरी गति (नाश) नियमसे होती है। ऐसा विचार कर राजाने बहु-

सुवर्ण नामका यज्ञ कराया। यज्ञकी आदिमें, बीचमें और अन्तमें ब्राह्मणोंको उसने खूब सुवर्णदान दिया। यज्ञशालाके पास ही एक विश्वभूति नामके ब्राह्मणका घर था। विश्वभूति भोग[1]ोपभोग[2] वस्तुओंमें यम[3], नियम[4] किया करता था और बड़ा निस्पृह था। इसकी स्त्रीका नाम सती था। वह पतिव्रता थी।

एक दिन विश्वभूति एक खेतमेंसे कुछ जौके दाने बीन लाया। उन्हें भाड़में भुँनाकर पानीके साथ उनके चार लड्डू बनाये। एकसे उसने होम किया, दूसरा अपने खानेको रक्खा, तीसरा स्त्रीको खानेके लिए दिया और चौथा लड्डू अतिथिदानके लिए रख छोड़ा। विश्वभूति प्रतिदिन ऐसा ही करने लगा। विश्वभूतिका यह नियम था—कुछ न कुछ दान अवश्य करना चाहिए। क्योंकि मन चाहा कभी किसीको नहीं मिलता। इसलिए इस बातकी आकांक्षा करना ठीक नहीं कि जब मेरे पास बहुत धन होगा तभी मैं दान दूँगा। एक दिन विश्वभूतिके घर पर पिहिताश्रव मुनि आहार करनेके लिए आये। बड़े आनन्दसे विश्वभूतिने मुनिको पड़गाया और अतिथिके निमित्त जो लड्डू

---

(१) जो एकबार भोगा जाता है उसे भोग कहते हैं जैसे भोजनादिक।

(२) जो बार बार भोगा जाता है उसे उपभोग कहते हैं जैसे वस्त्रादिक।

(३) मरणपर्यन्त नियम करनेको 'यम' कहते हैं।

(४) किसी निश्चित समयके लिए नियम किया जाय वह 'नियम' है।

वह रखता, उसे उसने मुनिको आहारके लिए दिया। मुनिने उस लड्डूको खा लिया। विश्वभूतिने तब अपने हिस्से-के लड्डूको भी दे दिया। मुनिने उसे भी खा लिया। तब उसने अपनी स्त्रीके मुँहकी तरफ देखा। उसकी स्त्रीने जल्दीसे अपना लड्डू भी लाकर दे दिया। मुनिने उसे खाकर आहार समाप्त किया। जब उसकी स्त्रीने अपना लड्डू लाकर दिया तो विश्वभूतिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह कहने लगा कि आज्ञाकारी पुत्र, सबको प्रसन्न करनेवाली विद्या, नीरोग शरीर, सज्जनोंकी संगति और प्यारी तथा आज्ञाकारिणी स्त्री ये पाँच चीजें दुःखको जड़मूलसे नाश करनेवाली हैं। इस निरन्तराय और शुद्ध आहार दानके फलसे देवोंने रत्नों और फूलोंकी वृष्टि की, सुगन्धित पवन चलाई, दुन्दुभी बजाए और जय-जयकार किया।

यह देखकर मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण कहने लगे—महाराज, आपके बहु-सुवर्णयज्ञका यह फल है। यह सुनकर राजाको बड़ा संतोष हुआ। पर जब वे ब्राह्मण उन रत्नोंको उठाने लगे तो वे रत्न अंगारे हो गये। तब उस समय किसीने राजासे कहा—महाराज, यह आपके यज्ञका फल नहीं, किंतु विश्वभूतिने जो मुनिको आहार दान किया, उसका फल है। इसे मुनिदानका फल समझ कर राजा मनमें विचारने लगा—सच है जो शुभ भावना संयुक्त हैं वे ही दानके पात्र हैं। आर्त-रौद्रध्यानी गृहस्थोंको दान देना व्यर्थ है। उनकी

भावनाओंमें पवित्रता बहुत थोड़ी होती है। जैसा कि एक जगह लिखा है—

गृहस्थ लोग न तो निर्दोष शील ही पाल सकते हैं और न तप ही तप सकते हैं, किन्तु वे हर समय आर्तध्यानमें लगे रहते हैं। इससे उनमें शुद्ध भावनाएँ उत्पन्न नहीं हो पातीं। इस बातको मैंने अच्छी तरहसे जान लिया कि दानके बिना संसाररूपी कूएसे हम गृहस्थ लोगोंका उद्धार नहीं हो सकता। हमारे लिए दान ही एक सुदृढ़ अवलम्बन है। इसलिए मुनियोंको दान देना चाहिए। क्योंकि मुनि ही मुक्तिके कारण हैं, आर्तध्यानी गृहस्थ नहीं। हाँ वे गृहस्थ मान्य हैं—उनका धर्म सबको प्रिय है, जो मुक्तिके कारण और संसारको प्रकाशित करनेवाले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयके धारक हैं। पर यह स्मरण रखना चाहिए कि उन्हें भी इस रत्नत्रयकी प्राप्ति उसी दानसे होती है जो बड़ी भक्तिसे दिया जाता है।

इसके बाद सोमप्रभने हाथ जोड़कर विश्वभूतिसे कहा—मुनिको दान देनेसे आपको जो फल हुआ, उसका आधा मुझे भी देनेकी कृपा कीजिए और मेरे सुवर्णयज्ञका आधा फल आप ले लीजिए। उत्तरमें विश्वभूतिने कहा—समझदार पुरुष दरिद्र भी होगा तब भी वह नीतिको छोड़कर अन्याय न करेगा। मैं भी यद्यपि दरिद्र हूँ तो भी स्वर्ग और मोक्षके

देनेवाले आहार, औषधि, अभय और शास्त्र इन चार दानोंको या इनके फलोंको धन लेकर न बेचूँगा। यह कोरा जवाब पाकर राजा पिहिताश्रव मुनिके पास गया और उनसे बोला—भगवन्, गृहस्थ लोग चार प्रकारका दान किस लिए दिया करते हैं? मुनि बोले—राजन्, आहार दान देनेसे देहकी स्थिति बनी रहती है। इसलिए आहार दान दिया जाता है। यह दान सब दानोंमें मुख्य है। जिसने आहार-दान दिया, समझिए उसने सब दान दिये। लाखों घोड़ोंका दान, गौओंका दान, भूमिका दान, सोने और चांदीके बर्तनोंका दान, सम्पूर्ण पृथिवीका दान और देवांगनाओंके समान करोड़ों कन्याओंका दान भी अन्नदानकी बराबरी नहीं कर सकता। औषधिदानसे रोगका विनाश होता है। रोग नाश हो जानेसे ही जप, तप, संयम आदि किये जा सकते हैं। इससे कर्मोंका क्षय होकर मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस कारण मुनि तथा और और रोगियोंके लिए औषधि-दान देना चाहिए। आचार्योंने कहा है—रोगीको औषधि देना चाहिए, नहीं तो शरीर नष्ट हो जायगा और शरीर नष्ट होजानेपर ज्ञान नहीं रहेगा और ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती। रेवती श्राविकाने महावीर भगवान्को औषधिदान दिया था, उसके फलसे उसने तीर्थंकरगोत्र नामकर्मका बन्ध किया। इसलिए औषधिदान भी देना योग्य है।

तीसरा अभय-दान है। जो एक जीवकी रक्षा करता

है, वह भी जब सदाके लिए निर्भय हो जाता है तब सब जीवोंकी रक्षा करनेवालेकी तो बात ही क्या है। इसलिए अभयदान सब प्राणियोंको देना चाहिए। अभयदानका देनेवाला दूसरे जन्ममें निर्भय होता है। सुमेरु पर्वतके बराबर सुवर्णदानसे, सम्पूर्ण पृथिवीके दानसे और गौ-दानसे जितना फल होता है उतना फल एक जीवकी रक्षा करनेसे होता है। इस विषयमें यमपाश चांडाल और भवदेव मल्लाहकी कथा प्रसिद्ध है। इसके सिवा अभयदानको-जीवदयाको छोड़कर जो कुपात्रोंको दान देता है उसका दान करना व्यर्थ है। कुपात्रको दान देना मानों साँपको दूध पिलाना है।

चौथा शास्त्र-दान है। इससे कर्मोंका क्षय होता है। अपने आप लिखकर वा लेखकोंसे लिखवा कर साधुओंको अथवा और पढ़नेवालोंको जो शास्त्रोंका देना तथा बाँचकर दूसरोंको सुनाना, इसको शास्त्रदान कहते हैं। शास्त्रदानका दाता दूसरे जन्ममें सम्पूर्ण शास्त्रोंका वेत्ता होता है और मोक्षके सुखको प्राप्त करता है। इस प्रकार मुनिराजसे महाराज सोमप्रभने सब दानोंका स्वरूप और फल सुनकर कहा—मुनिराज, मुझे भी जैन-व्रत दे दीजिए। मुनिराजने तब राजाको श्रावकोंके व्रत दिये। राजाने जैन होकर दानके सम्बन्धमें और भी कई जानने योग्य बातें मुनिराजसे पूछीं कि प्रभो, दान कैसा देना चाहिए और किस किसको देना

चाहिए ? मुनिराजने तब इस विषयको और भी स्पष्ट करके राजाको समझाया। उन्होंने कहा—न तो बालकको अर्थात् अज्ञान अवस्थामें, न भयसे तथा न प्रत्युपकारकी इच्छासे दान देना चाहिए और न नाचनेवाले, गानेवाले तथा हँसी-दिल्लगी करनेवाले भाड़ आदिकोंको देना चाहिए; किन्तु गृहस्थोंको उचित है कि वे विधिपूर्वक यथा-द्रव्य, यथा-क्षेत्र, यथा-काल और यथा-शास्त्र योग्य पात्रोंको दान दें। तथा मुनियोंको ऐसा अन्नदान न देना चाहिए जो देखनेमें अच्छा न हो, विरस हो, सड़-घुन गया हो, चलित-रस हो, रोग उत्पन्न करनेवाला हो, झूठा हो, नीच लोगोंके योग्य हो, दूसरेके लिए रक्खा हो, निन्दित हो, दुष्टोंका छुआ हो, त्याज्य हो, यक्ष क्षेत्रपालादिके निमित्त रक्खा हो, दूसरे गाँवसे लाया गया हो, मंत्र प्रयोगसे बुलाया गया हो, भेटमें आया हो, देने योग्य न हो, बाजारसे खरीदा गया हो, प्रकृतिसे विरुद्ध हो और ऋतुके अनुकूल न हो। और राजन्, इसके सिवा जो मुनि नये दीक्षित हो, अजान हो, या जो तपसे क्षीण शरीर हो गये हों, या कोई बड़े भारी रोगसे वे पीड़ित हों, जिससे वे तप न कर सकते हों, तो उनका उपचार करना चाहिए—उनकी टहल-चाकरी करनी चाहिए। जिससे वे तप करने योग्य हो जायँ। इसके सिवा करुणादान सब जीवोंको देना चाहिए—सब पर दया करनी चाहिए। यह उपदेश सुनकर राजा और भी पक्का श्रावक हो गया। ग्रन्थकार

कहते हैं कि हजार मिथ्यादृष्टियोंसे एक जैनी अच्छा है, हजार जैनियोंसे एक श्रावक अच्छा है, हजार श्रावकोंसे एक अणुव्रती अच्छा है, हजार अणुव्रतियोंसे एक महाव्रती अच्छा है, हजार महाव्रतियोंसे एक जैनशास्त्रका ज्ञाता अच्छा है, हजार जैनशास्त्रोंके ज्ञाताओंसे एक तत्त्ववेत्ता अच्छा है, और हजार तत्त्ववेत्ताओंसे एक दयालु अच्छा है; क्योंकि दयालुके समान अच्छा न कोई हुआ और न होगा। परन्तु जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, विनयी, कषाय रहित और शान्तचित्त, सम्यग्दृष्टि जीव इन सबसे अच्छा है।

इस प्रकार श्रावक होकर सोमप्रभ राजाने कुछ समय गृहस्थाश्रममें ही विताया। बादमें वह उग्र तप करके अनन्त सुखके धाम मोक्षको चला गया।

सुवर्णयज्ञकी सब कथा सुनकर सोमशर्माने मुनिसे कहा मुनिराज, अब तो मैं आपके चरणोंकी शरणमें हूँ। मुझे जिन-धर्मका प्रसाद दीजिए—मुझे सच्चा जैनी बनाइए। यह सुन-कर मुनिने उसे दर्शनपूर्वक श्रावकके व्रत दिये। व्रतोंको स्वीकार कर बोला—मुनिराज आजसे मैं कभी लोहेका हथियार न चलाऊँगा। यह नियम लेकर, सोमशर्मा अबसे काठकी तलवार बनवाकर और उसे एक सुन्दर म्यानमें रखकर राज-दरबारमें जाने-आने लगा। इसी तरह उसे रहते बहुत समय बीत गया। एक दिन किसी दुष्टने राजासे

उसकी चुगली की कि महाराज, सोमशर्मा मंत्री तो अपने पास काठकी तलवार रखा करता है। भला, लोहेकी तलवारके विना संग्राममें वह सुभटोंको कैसे मारेगा? सच तो यह है—मंत्री आपका सच्चा सेवक नहीं। ग्रन्थकार कहते हैं—दुष्टोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे अपने प्राणों तकको गँवाकर दूसरेके सुखमें विघ्न करते हैं। मक्खी ग्रासमें पड़कर अपने प्राणोंको खो देती है और खानेवालेको वमन करा देती है। अजितंजय इस दुष्टकी बातको मनमें रखकर कुछ समयके लिए चुप रहा। एक दिन उसने तलवारका प्रसंग छेड़कर राजकुमारोंको अपनी तलवार म्यानसे निकाल कर दिखलाई। राजकुमारोंने उसकी तलवारकी प्रशंसा की। राजाने तब उनकी भी तलवारें निकलवा कर देखी। उसने मंत्रीसे भी कहा कि तुम भी अपनी तलवार मुझे दिखलाओ। मैं देखूँ कि वह कैसी है? मंत्रीने राजाकी चेष्टासे उसका अभिप्राय जानकर मनमें विचारा कि यह किसी दुष्टकी करतूत जान पड़ती है। किसीने काठकी तलवारकी बात राजासे कह दी। नहीं तो राजा मेरी तलवारकी परीक्षा क्यों करता? अस्तु, मंत्रीने देव और गुरुका स्मरण कर मन ही मन कहा—यदि मेरे मनमें देव-गुरुका पक्का श्रद्धान है तो यह काठकी तलवार लोहमयी हो जाय। इस विचारके साथ ही मंत्रीने उस तलवारको म्यान सहित राजाके हाथमें दे दी। राजाने ज्यों ही म्यानसे उसे निकाला, क्या आश्चर्य है कि वह सूर्यके

समान चमकते हुए लोहेकी निकली। तब राजाने उस चुगलखोरकी ओर देखा और कहा—क्योंरे दुष्ट! मेरे सामने भी इतनी भारी झूठ? राजाको तब बड़ा क्रोध आया। वह कहने लगा—दुष्टोंका यह स्वभाव ही होता है जो वे दूसरोंके अवगुणोंको ही कहा करते हैं, चाहे दूसरोंमें अवगुण हों या न हों।

राजाको क्रोधित देखकर मंत्रीने कहा—महाराज, राजाको समझदार लोग सब देवोंका अंश मानते हैं। इसलिए राजाको देवकी तरह मानकर उसके सामने झूठ कभी न बोलना चाहिए। यह सत्य है, पर इस चुगलखोरने जो आपसे कहा है, इसका कारण है। इसलिए इस पर आप क्रोध न करें। जो कुछ भी इसने कहा है वह सब सत्य है। यह सुनकर राजा बोला—यह कैसा सत्पुरुष है जो कि अपनी बुराई करनेवाले पर भी दया दिखलाता है। धिक्कार है इस चुगलखोरको जो ऐसे उपकारीकी भी बुराई करता है। राजाने फिर मंत्रीसे पूछा—यदि सचमुच तुम्हारी तलवार काठकी थी तो वह लोहेकी कैसे होगई? मंत्रीने तब अपना सब वृत्तान्त सुनाकर कहा—महाराज, लोहेके हथियार न रखनेका मेरा नियम है। पर देव-गुरु-धर्मका जो मुझे दृढ़ श्रद्धान था, उसके पुण्य-प्रभावसे यह काठकी तलवार भी लोहेकी हो गई। इसके लिए आप मुझे क्षमा करें। यह सुनकर सब लोगोंने मंत्रीकी बड़ी प्रशंसा की और पूजा की।

देवोंने भी पंचाश्चर्य वर्षाकर मंत्रीको पूजा। राजा इस वृत्तान्तको सुनकर और जिनधर्मके माहात्म्यको देखकर लोगोंसे कहने लगा—

जिनधर्मको छोड़कर और कोई धर्म दुर्गतिसे नहीं बचा सकता और न इस संसारमें कुछ सुख ही है। तब क्यों न आत्महित किया जायँ। यह विचार कर और संसार-विषय-भोगोंसे विरक्त होकर उसने अपने शत्रुंजय पुत्रको राज्य दे दीक्षा लेली। मंत्री अपना पद देवशर्मा पुत्रको देकर साधु हो-गया। इस समय और भी कई लोगोंने समाधिगुप्त मुनिके पास दीक्षा ग्रहण की। किसी किसीने केवल श्रावकोंके ही व्रत लिये। सोमप्रभकी रानी सुप्रभा, मंत्रीकी स्त्री सोमा तथा और कई स्त्रियोंने इस अवसर पर अभयमती आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण की। कुछ स्त्रियोंने श्रावकके व्रत लिये।

यह कथा कहकर विष्णुश्रीने कहा—नाथ, यह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मुझे दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है यह सुनकर अर्हद्दासने कहा—प्रिये, जो तूने देखा है, उसका मैं भी श्रद्धान करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उसमें रुचि करता हूँ। अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर कुंदलता बोली—यह सब झूठ है। इसलिए न मैं इसका श्रद्धान करती, न इसे मैं चाहती और न इसमें मेरी रुचि ही है। राजा, मंत्री और चोरने विष्णु-श्रीकी सब बातें सुनकर मनमें विचारा—विष्णुश्रीकी प्रत्यक्ष

देखी बातको भी यह झूठ बतलाती है। यह बड़ी पापिनी है। इसे सबेरे ही गधे पर चढ़ाकर शहरसे निकाल दूँगा। चोरने सोचा—यह सच है कि ऊँची जातिका होकर भी दुष्ट अपने स्वभावको नहीं छोड़ता। देखिए, अग्नि यदि चन्दनकी लकड़ीकी भी हो तब भी वह जलावेगी तो जरूर ही। उसी तरह ऊँचे कुलमें उत्पन्न होकर भी खल खल ही रहेगा—वह अपने स्वभावको न छोड़ेगा।

५—नागश्रीकी कथा।

विष्णुश्रीकी कथा सुनकर अर्हद्दासने नागश्रीसे कहा—प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वप्राप्तिका कारण बतलाओ। नागश्रीने तब यों कहना शुरू किया—बनारसमें जितारि नामका एक चंद्रवंशी राजा था। कनकचित्रा उसकी रानी थी। इसके एक लड़की थी। उसका नाम मुंडिका था। मुंडिकाको मिट्टी खानेकी बुरी आदत पड़ गई थी। इसलिए वह सदा रोगसे पीड़ित रहती थी।

राजमंत्रीका नाम सुदर्शन था। सुदर्शना मंत्रीकी स्त्री थी। एक समय वृषभश्री आर्यिकाने मुंडिकाको उपदेश देकर जैनी बना लिया। ग्रन्थकार कहते हैं कि परोपकार करना सत्पुरु-

पोंका स्वभाव ही होता है। मुंडकाने जो व्रतोंका निर्दोष पालन किया, उसके प्रभावसे उसका सब रोग चला गया। तब आर्यिकाने उससे कहा—पुत्री, जो निर्दोष व्रतोंका पालन करते हैं वे स्वर्गादिके भी जब पात्र होते हैं तब और साधारण रोगादिकको दूर होनेकी तो बात ही कौनसी है। मुंडिका जब ब्याह योग्य हुई तब जितारिने उसका स्वयंवर रचा। देश-देशान्तरोंके राजकुमार मुंडिकाको दिखाये गये,पर राजकुमारीको उनमें कोई पसन्द न आया—उसने किसीको नहीं वरा। वह अपने स्थानको चली गई।

तुंड देशमें चक्रकोट नामका नगर है। उसमें भगदत्त-नामका राजा था। यह बड़ा दानी था, रूप लावण्यादि गुणोंसे युक्त था तथा बड़ा वैभवशाली था; पर था छोटी जातिका। इसकी रानीका नाम लक्ष्मीमती था। राजमंत्री सुबुद्ध था। गुणवती मंत्रीकी स्त्री थी। एक बार भगदत्तने जितारिसे राजकुमारी मुँडिकाके लिए मँगनी की। जितारिने उत्तरमें कहा—भगदत्त, मैंने अपनी प्रिय कुमारीको अच्छे अच्छे राजकुमारोंके साथ तो ब्याहा नहीं और तू ओछी जातिमें पैदा हुआ, भला तब मैं तुझे अपनी पुत्रीको कैसे दूँगा? भगदत्त बोला—राजन्, असलमें तो मनुष्योंमें गुण होने चाहिए। जाति कैसी ही हो, उससे कुछ लाभ नहीं। जितारिने तब कहा—अच्छा तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं युद्धमें तुम्हें सब कुछ मनोवाँछित दूँगा। जिता-

रिका यह उत्तर सुनकर भगदत्तको बड़ा क्रोध आया। वह जितारिपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगा। सुबुद्ध मंत्रीने उस समय भगदत्तसे कहा महाराज, सब सामग्री इकट्ठी करके युद्धके लिए जाना अच्छा है। नहीं तो पराजित होना पड़ता है, इसके सिवा जिस पर चढ़ाई करना है उसके बलको भी देखना चाहिए। विना इन बातों पर पूरा विचार किये युद्ध करनेवाले इस तरह मर जाते जैसे दीयेमें पतंग। विना किरणोंके जैसे सूर्यकी शोभा नहीं उसी तरह सैन्यके विना राजाकी भी शोभा नहीं। क्योंकि एक नहीं, किन्तु समुदाय बलवान होता है। देखिए, एक तृण कुछ नहीं कर सकता, पर उन्हींकी रस्सी बन जाने पर बड़े बड़े हाथी भी बाँध लिये जाते हैं।

राजाको चाहिए कि वह ऐसे नौकर-चाकरोंको अपने यहाँ रक्खे जो चतुर हों, कुलीन हों, शूरवीर हों समर्थ हों और भक्ति रखनेवाले हों।

महाराज, आपके पास ऐसे सेवक हैं, सैन्य है और सब सामग्री है तब आपको अकेले चढ़ाई करना ठीक नहीं। यह सुन भगदत्तने कहा—मेरा हित समझ कर जो तुमने कहा वह सब ठीक है तुम मेरे हितचिंतक हो, तब तुम्हारा कहना मुझे मानना ही चाहिए। तुम्हारी बात न माननेसे उल्टी मेरी हानि है। भगदत्तने तब सब सेना वगैरहको साथ लेकर ही चढ़ाई की।

इसी बीचमें लक्ष्मीमतीने भगदत्तसे कहा—नाथ, आप व्यर्थ हठ क्यों करते हैं? जहाँ दोनोंकी समानता होती है, वहीं विवाह, मित्रता आदि बातें होती हैं। जब जितारि और आपकी समानता नहीं है तब आपका उसके साथ सम्बन्ध भी नहीं हो सकता। इसलिए आपको युद्ध न करना चाहिए। यों ही बैठे-बिठाये कोई काम कर बैठनेसे सिवा मरणके और कुछ नहीं होता। भगदत्तने तब लक्ष्मीमतीसे कहा—तू मूर्ख है, इन बातोंको नहीं समझ सकती। यदि कोई साधारण मनुष्य होता तो मैं उसके कहने पर ध्यान भी न देता। पर उसे तो अपने राजा होनेका बड़ा घमंड है और उसी घमंड-में आकर उसने मुझसे कहा है कि युद्धमें मैं तुम्हें तुम्हारा सब मनोवांछित दूँगा। अब यदि मैं उससे युद्ध न करूँ तो और साधारण राजाओंकी नजरसे भी गिर जाऊँगा। वे मुझे न मानेंगे और ऐसा होना मुझे मंजूर नहीं। क्योंकि संसा-रमें एक क्षणमात्र भी क्यों न जीना हो, पर वह जीना उन्हीं पुरुषोंका सफल है जो विज्ञान, शूरवीरता, ऐश्वर्य और उत्तम उत्तम गुणोंसे युक्त हैं और बड़े बड़े प्रतिष्ठित लोग जिनकी प्रशंसा करते हैं। यों तो झूठा खाकर कौआ भी जीता रहता है। पर ऐसे जीनेसे कोई लाभ नहीं। इस तरह लक्ष्मीमतीको समझा-बुझाकर बड़े दल-बलके साथ भगदत्तने जितारि पर चढ़ाई की। लक्ष्मीमतीने तब अगत्या कहा—अच्छा जाइए, जो होना होगा वह तो होगा

ही। भगदत्तको प्रयाण करते समय कई शुभ शकुन हुए। दही, दूर्वा, अक्षत-पात्र, कमल-पुष्प युक्त जलभरे घड़े और पुत्रवती स्त्रियाँ आदि सामने दिखाई पड़ीं।

उधर किसीने आकर जितारिसे कहा—महाराज, भगदत्त सेना लेकर आप पर चढ़ आया है। उसके लिए कोई उपाय कीजिए। यह सुन जितारिने उस मनुष्यसे कहा—संसारमें ऐसा कौन मनुष्य है जो मेरे ऊपर चढ़ाई कर सके? सिंह पर हरिणने, राहु पर चंद्रमा और सूर्यने, बिलावपर चूहोंने, गरुड़ पर साँपने, कुत्ते पर बिल्लीने, यमराज पर प्राणियोंने और सेना पर कौओंने कभी चढ़ाई की हो, यह बात न कभी देखी गई और न सुनी गई। बात यह है कि जबतक सूर्यका उदय नहीं होता है तभीतक अंधकार रहता है। जितारि यह कह ही रहा था कि भगदत्तने छुपे हुए आकर बनारसको चारों ओरसे घेर लिया। जितारिने जब भगदत्तकी सेनाका कोलाहल सुना तब उसने भी अपनी सब सेना लेकर बड़े वेगसे भगदत्तका साम्हना किया। जितारिको प्रयाण करते समय कई अपशकुन हुए—जैसे अकाल वृष्टि, भूमिका काँपना, प्रचण्ड उल्काका गिरना आदि। ये अपशुकन क्या हुए मानों मैत्री-भावसे राजाको युद्ध करनेके लिए मना करने लगे। इन अपशकुनोंको देखकर मंत्री ने कहा—महाराज, मेरी समझमें तो भगदत्तके साथ राजकुमारीको ब्याह देकर सुखसे रहनाही अच्छा है। आप क्यों

व्यर्थ झगड़ेमें पड़ते हैं। क्योंकि समझदार राजा ग्राम देकर देशकी रक्षा करते हैं, कुल द्वारा ग्रामकी रक्षा करते हैं और कुल तथा अपनी रक्षाके लिए समस्त पृथिवी तकको त्याग-देते हैं। जितारिने तब उत्तर दिया—तुम डरते क्यों हो? मेरी तलवारकी चोट सह लेनेके लिए कोई समर्थ नहीं हो सकता। वज्र-प्रहारको सिरमें कौन सह सकता है? हाथोंसे समुद्रको कौन तैरकर पार कर सकता है? आगकी शय्या पर सुखकी नींद कौन सो सकता है? हर एक ग्रासमें विषको खानेवाला कौन है? यह सुनकर मंत्रीने फिर कहा—महाराज, भगदत्तकी सेना बड़ी है, उसके पास युद्ध सामग्री भी बहुत है और उसके सैनिकगण भी बड़े साहसी हैं। इसलिए युद्ध करना उचित नहीं।

राजाने कहा—तुमने कहा वह ठीक है, पर सिद्धि और जय पराक्रमसेही मिलती है, केवल बहुत सामग्रीसे नहीं।

इसके बाद भगदत्तने जितारिके पास अपना दूत भेजा, जो अच्छा समझदार, बातको याद रखनेवाला, बोलनेमें चतुर, दूसरोंके अभिप्रायोंको जाननेवाला, धीर और सत्य-वादी था। युद्धका यह नियम है कि पहले दूत भेजा जाता है और बादमें युद्ध किया जाता है। दूतसे शत्रु राजाकी सेनाकी सबलता और निर्बलताका पता लग जाता है। दूतने आकर जितारिसे कहा—महाराज, अपनी राजकुमारीका मेरे राजाधिराज भगदत्तके साथ व्याह करके आप सुखसे राज्य

करें। अन्यथा आपके लिए अच्छा न होगा। आपका और आपके राज्यका सत्यानाश हो जायगा। क्योंकि अयोग्य कार्यका प्रारंभ करना, सज्जनोंसे विरोध करना, बलवानोंसे स्पर्द्धा करना और स्त्रियोंका विश्वास करना, ये चार बातें मृत्युकी द्वार हैं। इसलिए बलवानके साथ आपको युद्ध करना उचित नहीं। यह सुनकर जितारिने कहा—तू क्यों बक बक कर रहा है। युद्धमें मैं तेरे स्वामीका बल देखूँगा कि वह बेचारा मेरे सामने ठहर सकेगा क्या? जो होना होगा वह होगा। मैं भगदत्तको अपनी राजकुमारी नहीं ब्याह सकता। मेरा सर्वनाश भी क्यों न हो जाय, पर मैं अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ सकता। महापुरुष जिस बातकी प्रतिज्ञा कर लेते हैं वे उसे फिर कभी नहीं छोड़ते।

यह कहते कहते राजाको बड़ा क्रोध आया। उसने दूतको मार डालनेकी अपने नौकरोंको आज्ञा दे डाली। तब मंत्रीने उससे कहा—महाराज, दूतका मारना अयोग्य है। दूतके मारनेसे राजा और मंत्री दोनों नरकमें जाते हैं। इस प्रकार राजाको समझा-बुझाकर मंत्रीने दूतको वहाँसे निकलवा दिया।

दूतने आकर भगदत्तसे कहा—महाराज, जितारि अपने बाहुबलके सामने किसीको नहीं गिनता। यह सुन भगदत्त युद्धके लिए रणभूमिके सम्मुख हुआ। जितारि भी तब रणभूमिकी ओर बढ़ा। उसकी सेनाके भयसे दशों दिशाएँ चलायमान हो गईं, समुद्र उछलने लगा, पातालमें शेषनाग

चकितसा रह गया। पर्वत काँपने लगे, पृथिवी घूमने लगी, विषेले सर्प विष उगलने लगे, और एक बड़ी भारी हलचल-सी मच गई। दोनों तरफकी सेनाएँ भिड़ीं। मार-काट होने लगी। अन्तमें भगदत्तकी सेनाने जितारिकी सेनाको तितर-वितर कर दिया—उसे हरा दिया। यह देख मंत्रीने जितारिसे कहा—महाराज, देखिए अपनी सेनाके पैर उखड़ गये। अब युद्धक्षेत्रमें ठहरना ठीक नहीं है। कूचका नगारा बजवाइए। जितारिने तब मंत्रीसे कहा—तुम इतने डरते क्यों हो? अपनेको तो दोनों ही तरहसे लाभ है। यदि जीत गये तो विजय-लक्ष्मी मिलेगी और यदि युद्धमें मारे गये तो स्वर्गमें देवांगना मिलेगी। यह शरीर तो क्षण-विनाशीक है ही, तब रणमें या मरणमें चिंता किस बातकी? देखो, बृहस्पति जिसका गुरु था, वज्र हथियार था, देवोंकी जिसके पास सेना थी, स्वर्ग किला था, विष्णुकी जिस पर कृपा थी, ऐरावत जिसका हाथी था, इतना बल रहने पर भी इन्द्रको शत्रुसे हारना पड़ा। इसलिए अब तो भाग्य ही शरण है। पुरुषार्थसे कुछ लाभ नहीं। ऐसे पुरुषार्थको भी धिक्कार है। मंत्रीने उसका निश्चय सुन कहा—महाराज, आप कहते हैं वह ठीक है, पर व्यर्थ मरनेहीसे क्या लाभ? मनुष्य यदि जीता रहे तो वह सैकड़ों लाभ उठा सकता है। इस समय जितारिको युद्धमें कुछ ढीला देखकर भगदत्तने उसका पीछा किया। जितारि भागने लगा। मंत्रीने तब भगदत्तको मनाकर कहा कि भागते हुएका पीछा

बलवानको न करना चाहिए क्योंकि संभव है भागनेवाला अपने मरनेका निश्चय कर पीछा करनेवाले पर वार करदे और उससे कोई भारी अनर्थ हो जाय। यह सुनकर भगदत्त रह गया। इधर मुंडिकाको जब यह जान पड़ा कि मेरे पिता युद्धमें हार गये तब उसे यह भी सन्देह हुआ कि जिसके लिए यह सब युद्धकाण्ड हुआ, उस इच्छाको भगदत्त अब अवश्य पूरी करेगा—वह मुझसे बलात्कार अपना व्याह करेगा और मैं उसे पसन्द नहीं करती। तब मुझे अपने सतीत्व-धर्मकी रक्षाके लिए कोई उपाय करना नितान्त ही आवश्यक है। मुंडिकाने कई उपाय सोचे, पर उनमें उसे सफलता न जान पड़नेसे अगत्या वह जिनभगवान्‌का हृदयमें ध्यान कर और कुछ त्याग-व्रत ले पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण करती हुई जाकर कुएमें गिर गई।

उसके सम्यक्त्वके प्रभावसे जल स्थल हो गया—कुएका पानी सूख गया। उसके ऊपर रत्नमयी एक सुन्दर महल बन गया। उसके बीचों बीच सजे हुए सिंहासन पर बैठी हुई मुंडिका सती सीताकी तरह मालूम पड़ने लगी। देवोंने तब पंचाश्चर्य किये।

इधर भगदत्त दरवाजा तोड़कर सेना सहित शहरमें घुस-गया और उसे लूटने लगा। शहरको लूट-लाटकर वह जितारिके महलकी ओर बढ़ा। पर नगरदेवताने उसे महलमें न घुसने देकर बाहर ही कील दिया।

इतनेहीमें भगदत्तके किसी परिचारकने आकर उसे मुंडिकाका वृत्तान्त कह सुनाया। भगदत्तने भी जाकर जब इस वृत्तान्तको अपनी आँखोंसे देखा तो उसका सब गर्व चूर चूर हो गया। वह तब बड़े विनयसे मुंडिकाके पैरोंमें पड़कर कहने लगा—बहिन, मैंने यह सब अज्ञानसे किया। मुझे क्षमा करो! इस प्रकार उससे क्षमा माँगकर उसने जितारिको अभय देकर बुलाया और उससे भी क्षमा माँगी। इस घटनासे भगदत्तके चित्तमें बड़ा वैराग्य हुआ। वह कहने लगा—जिनधर्महीसे जीवोंका हित हो सकता है। संसार-समुद्रमें कर्मरूपी वनको भस्म करनेको जिनधर्म ही अग्निके समान है। यही सब जीवोंको सहायक है। इस प्रकार विचारकर भगदत्त और जितारिने अपने अपने पुत्रोंको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण करली। इन्हींके साथ मुंडिकाने भी दीक्षा ग्रहण की। इनके सिवा और बहुतसे लोगोंको भी धर्म लाभ हुआ।

इस कथाको कहकर नागश्रीने अर्हद्दाससे कहा—नाथ, यह वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मेरी मति धर्ममें दृढ़ होकर मुझे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—प्रिये, तुमने कहा वह सत्य है। मैं इसका श्रद्धान करता हूँ और इसमें रुचि करता हूँ। अर्हद्दासकी अन्य अन्य स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर कुंदलताने पहलेकी तरह अब भी वही कहा कि यह सब झूठ है मैं इस पर विश्वास नहीं करती। कुन्दलताके इस आग्रहको सुनकर राजा और मंत्रीने सोचा—

यह बड़ी दुष्टा है। इसे सवेरे ही गधे पर चढ़ाकर शहरसे निकलवा देना ही उचित है। चोरने विचारा—दुर्जनोंका ऐसा स्वभावही होता है बिना किसीकी निन्दा किये उन्हें अच्छा ही नहीं लगता। कौआ अच्छी अच्छी चीजोंको खाता है, पर उसे विष्टाके बिना तृप्ति ही नहीं होती !

६—पद्मलताकी कथा।

इसके बाद अर्हद्दासने पद्मलतासे कहा—प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वकी प्राप्तिका कारण बतलाओ। पद्मलता तब हाथ जोड़कर यों कहने लगी—

अंगदेशमें चंपापुर नामका नगर है। उसमें धाड़िवाहन नामका राजा था। इसकी रानीका नाम पद्मावती था। उसी नगरमें वृषभदास नामका एक सेठ रहता था, वह सम्यग्दृष्टि था और सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त था। इसकी भी स्त्रीका नाम पद्मावती था। इसके पद्मश्री नामकी एक लड़की थी। वह बड़ी रूपवती थी। इसी नगरमें बुद्धदास नामका एक और सेठ रहता था। यह बौद्धधर्मका अनुयायी और प्रसिद्ध दानी था। इसकी स्त्रीका नाम बुद्धदासी था और लड़केका बुद्धसिंह। एक दिन बुद्धसिंह अपने मित्र कामदेवके साथ कौतूहल-वश जिनमंदिरमें

चला गया। वहाँ पद्मश्री जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा कर रही थी। पद्मश्रीने इस समय यौवनावस्थामें पदार्पण किया ही था। इसलिए वह परम सुन्दरी थी। उसकी वाणी बड़ी मीठी और सरस थी। उसके स्तन उन्नत थे। होंठ पके कुँदुरुके समान थे और मुख चन्द्रमाके समान था। उसकी अनोखी सुन्दरताको देखकर नीच बुद्धासिंह कामान्ध हो गया। जैसे तैसे वह घर पर आकर खाट पर पड़ गया। पुत्रको चिंतित देखकर उसकी माताने उससे पूछा—बेटा, आज तुझे खाना-पीना क्यों नहीं रुचता? तुझे क्या कोई बड़ी भारी चिन्ता है? लाज छोड़कर सब कारण बतला। बुद्धासिंह बोला—मा, यदि वृषभदास सेठकी लड़की पद्मश्रीके साथ मेरा विवाह हो, तो कहीं मैं जी सकता हूँ। अन्यथा मरनेके सिवा मेरे भाग्यमें और कुछ नहीं बदा है। माने लड़नेका यह हाल सुन-कर अपने पतिसे जाकर कहा। बुद्धदासने आकर तब बुद्धासिंहसे कहा—देखो, वृषभदास जैनी है, मदिरा और मांस खानेवाले हम लोगोंको वह चांडालकी तरह देखता है तब तेरे साथ वह अपनी कन्याको कैसे ब्याह देगा? इसलिए जिस वस्तुको पासको उसीके लिए हठ करना अच्छा होता है। और दूसरी बात यह है कि जिनका आचार-विचार एकसा हो, समान कुल हो, समान गुण हों, उन्हींसे मित्रता, विवाह आदि सम्बन्ध होते हैं। यह सुनकर बुद्धसिंहने कहा—पिताजी, ज्यादा बातोंसे क्या मतलब? मैं उसके बिना किसी तरह नहीं जी सकता। बुद्धदासने

कहा—सच है, कामका बड़ा ही विषम प्रभाव है—उसके सामने किसीकी नहीं चलती। जो कामरूपी आगसे जल रहा है, उस पर अमृत भी क्यों न सींचा जाय उसकी वह आग कभी न बुझेगी। नीतिकारने बहुत ठीक लिखा है कि—

तभीतक प्रतिष्ठा-मान-मर्यादा बनी रहती है, तभीतक मनमें चपलता नहीं आ पाती—मन शान्त बना रहता है और तभीतक संसारके तत्त्वोंका ज्ञान करानेवाले दीपकरूप सिद्धान्तशास्त्रकी नई नई बातें मनमें सूझा करती हैं—प्रतिभाका विकाश होता रहता है, जबतक कि समुद्रकी लहराती हुई लहरोंके समान चंचल मानिनी स्त्रियोंके कटाक्षोंकी—हाव-भाव-विलासोंकी मारसे जर्जरित होकर हृदय लम्बी लम्बी निसासें न डालने लगे।

बुद्धसिंहकी भी यही दशा है। असलमें यह मूर्ख है। इसको वशमें करना कठिन है। और सब साध्य है, पर मूर्खका वश करना बड़ा ही असाध्य है। मगरके मुँहमें हाथ देकर नुकीली डाढ़ोंके तले दबा हुआ मणि निकाला जा सकता है, अनन्त तरंगोंसे लहराता हुआ समुद्र तैरा जा सकता है, क्रोधित साँप फूलकी तरह सिर पर रक्खा जा सकता है, पर हठी और मूर्खका चित्त वशमें नहीं किया जा सकता। जिसकी जो आदत पड़ जाती है, फिर सैकड़ों तरहकी शिक्षाओंसे भी वह नहीं छूटती। अस्तु, बुद्धदासने बुद्धसिंहसे कहा—अच्छा थोड़ा धैर्य रक्खो। मैं इस कामके लिए शनैः शनैः यत्न करता हूँ। देखो, पानी डालनेसे धीरे धीरे जमीन तर हो जाती है, विनयसे

धीरे धीरे कार्यसिद्धि हो सकती है, कपटसे धीरे धीरे शत्रु भी मारा जा सकता है और पुण्य-कर्म करते रहनेसे धीरे धीरे मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। ऐसा विचार कर मायाचारीसे ये दोनोंही पिता-पुत्र जैनी हो गये। इन्हें जैनी हुए देखकर वृषभदास बड़ा प्रसन्न हुआ। वह बोला—ये दोनों धन्य हैं जो मिथ्यात्वको छोड़कर सुमार्गमें लग गये। इसी सम्बन्धसे धीरे धीरे वृषभदास और बुद्धदासकी मित्रता भी हो गई। एक दिन वृषभदासने बुद्धदासको निमन्त्रण देकर भोजनके लिए अपने घर बुलाया। ग्रन्थकार कहते हैं—देना और लेना, गुप्त बात कहना और सुनना, तथा खाना और खिलाना, ये छह मित्रताके लक्षण हैं। बुद्धदास भोजन करनेके लिए बैठा तो, पर उसने भोजन किया नहीं। यह देख वृषभदासने उससे पूछा—आप भोजन क्यों नहीं करते हैं? बुद्धदासने कहा—यदि आप अपनी लड़कीका विवाह मेरे लड़केके साथ करदें तो मैं आपके यहाँ भोजन कर सकता हूँ। वैसे—विना किसी प्रकारके गाढ़े सम्बन्धके मैं नहीं जीम सकता। वृषभदासने कहा—बस, इसी छोटीसी बातके लिए इतना आग्रह? इसकी आप क्यों चिंता करते हैं। मैं तो आज अपनेको बड़ा भाग्यवान् गिनता हूँ, जो आप मेरे घर तो आये। क्योंकि वे नर बड़े ही पुण्य-कर्मा हैं जिनके घर पर मित्र जन आते हैं। आप भोजन तो कीजिए। मैं अवश्य आपका कहना करूँगा। बुद्धदासने तब भोजन किया। कुछ दिनों बाद शुभ मुहूर्तमें

बुद्धसिंहका पद्मश्रीके साथ सचमुच ही विवाह हो गया। बुद्धसिंह पद्मश्रीको लेकर घर आगया। घर पर आते ही पिता और पुत्र दोनोंने फिरसे बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। यह देखकर वृषभदासको बड़ा खेद हुआ। उसने विचारा—गुप्त प्रपंचोंको कोई नहीं जान सकता। विष्णुका रूप बनाकर एक कोरीने राजाकन्याके साथ वर्षोंतक सुख भोगा। सच है—छुपे छलका ब्रह्मा भी पार नहीं पा सकता, जो दुष्ट धनादिककी लालसासे अविश्वासकी घर मायाको करता है, वह उससे होनेवाले बड़े बड़े अनर्थोंको नहीं देखता। बिल्ली दूध तो पीती है, पर ऊपरसे पड़नेवाली लाठियोंकी मारको नहीं देखती। जो हो, उन्हें ऐसा करना उचित नहीं था। क्योंकि गुरु-साक्षीसे लिए व्रतका प्राणान्त हो जाने पर भी भंग न करना चाहिए। स्वीकृत व्रतके भंग करनेसे बड़ा दुःख होता है। कारण व्रत बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है और प्राण तो जन्म जन्ममें बने बनाये हैं। बुद्धदास पहले बौद्धधर्मी था, उससे जैनी हुआ और फिर बौद्ध हो गया। यह उसने अच्छा नहीं किया। यह विचार कर बेचारा वृषभदास चुप रह गया।

एक दिन बुद्धदासके गुरु पद्मसंघने पद्मश्रीसे कहा—पुत्री सब धर्मोंमें एक बौद्धधर्म ही श्रेष्ठ धर्म है। इसलिए तू भी इसे स्वीकार कर। यह सुनकर पद्मश्री बोली—गुरुजी, बौद्धधर्म नहीं, किन्तु जैनधर्म ही सब धर्मोंमें उत्तम है। अतः मैं इसे

छोड़कर नीच मार्गका अवलम्बन नहीं ले सकती—मेरा हृदय इसे नहीं चाहता।

मृगमांसको खानेवाले सिंहको जब भूख लगती है तब वह घास नहीं खाने लगता। इसी तरह कुलीन पुरुष आपत्ति आनेपर भी नीच कामोंको नहीं करते। आजतक महादेव अपने गलेमें कालकूट विष रक्खे हुए हैं, कछुआ—कूर्मावतार आज भी पृथिवीको अपनी पीठ पर उठाये हैं और समुद्र वड़वानलको निरन्तर अपने उदरमें रखे रहता है, यह सब क्यों? इसीलिए न कि बड़े पुरुषोंने जिस बातको एक बार स्वीकार कर लिया, फिर वे उसे कभी नहीं छोड़ते। इसी तरह ग्रहण किये हुए व्रत-नियमको छोड़ना उचित नहीं और जो छोड़ बैठता है वह अभागा धन-धान्यादिसे रहित, कायर और सदा दुःखी रहता है मनुष्यको सर्वदा अपना हित करना चाहिए। लोग तो तरह तरहसे बका ही करते हैं। पर वे कर कुछ नहीं सकते। संसारमें ऐसा कोई उपाय ही नहीं है, जिससे सब प्रसन्न रहें। एक आदमी सबको प्रसन्न रख भी नहीं सकता। इसलिए मैं जैनधर्मको छोड़कर बौद्धधर्मको स्वीकार नहीं कर सकती। यह सुनकर बुद्धगुरु पद्मसंघ अपने मठमें चला गया।

कुछ दिनों बाद पद्मश्रीके पिता वृषभदास स्वर्गवास हो गया। पिताकी मृत्युसे पद्मश्रीको बड़ा दुःख हुआ। पर कालके आगे सब अवश हैं। प्रसंग पा एक दिन बुद्धदासने पद्मश्रीसे

कहा—बहू, मेरे गुरुने तुम्हारे पिताके पुनर्जन्मकी बाबत कहा है—वे मरकर वनमें मृग हुए हैं। उन्होंने जैसा कहा वह सत्य होना ही चाहिए। क्योंकि वे भूत, भविष्य और वर्तमानकी सब बातोंको जान लेते हैं। पद्मश्रीको अपने पिताकी इस प्रकार बुराई सुनकर मनमें बड़ा क्रोध आया। तब इसका बदला चुकानेके लिए उसने एक चाल चली। उसने बुद्धदाससे कहा—यदि सचमुच आपके गुरु ऐसे त्रिकालके ज्ञाता हैं, तो मैं अवश्य बौद्धधर्म स्वीकार करूँगी। इस बातको कुछ दिन बीतने पर एक दिन पद्मश्रीने कुछ बौद्ध साधुओंको भोजनके लिए निमंत्रण दिया। साधु लोग बड़ी प्रसन्नतासे भोजन करने आये। पद्मश्रीने भी बड़े आदरसें उन्हें बैठाया, उनकी पूजा की। घरके बाहर उनके जूते रक्खे थे। पद्मश्रीने उनमेंसे उनके बायें पैरका एक एक जूता मँगवाकर उनका खूब बारीक चूर बनाया और उसके पक्वान बनाकर उन साधुओंको खिला दिये। साधुओंने उस भोजनकी बड़ी प्रशंसा की। भोजनान्तमें पद्मश्रीने उन साधुओंको चंदन लगाया, पान खिलाये और कहा—महात्माओं, मैं सबेरे ही बौद्धधर्मको स्वीकार करूँगी। सब साधुओंने तब एक स्वरसे कहा बहुत ठीक है। इसके बाद जब वे लोग जाने लगे तो उन्होंने देखा कि उनके बायें पैरका एक एक जूता गायब है। इस आश्चर्यको देखकर उन्होंने कहा—ऐसी खुली जगहसे हमारे जूते कौन ले गया? इस

कोलाहलको सुनकर पद्मश्रीने वहाँ आकर उन साधुओंसे कहा—भला, आप लोग तो ज्ञानी हैं, त्रिकाल-ज्ञाता हैं तब अपने ज्ञान द्वारा क्यों नहीं पता लगा लेते? साधुओंने कहा—अरी हम ऐसे ज्ञानी नहीं हैं। पद्मश्रीने तब फिर कहा—आप लोग तो गजब करते हैं! अरे, जब अपने पेटमें रखे हुए जूतोंको ही आप नहीं जान सकते, तब आपने यह कैसे जान लिया कि मेरे पिता मरकर वनमें मृग हुए हैं? साधुओंने कहा—तो क्या वे जूते हम लोगोंके पेटमें हैं? पद्मश्री बोली—बेशक, इसमें भी कोई संदेह है? तब पद्मश्रीने सबको कै कराकर उन जूतोंके छोटे छोटे टुकड़ोंको दिखा दिया। यह देखकर त्रिकालज्ञानी साधु बड़े शर्मिन्दा हुए। उन्होंने गुस्सा होकर बुद्धदाससे कहा—पापी बुद्धदास, तेरे उपदेशसे ही तेरी बहू पद्मश्रीने न करने योग्य काम भी कर डाला। अपने गुरुओंका ऐसा अपमान देखकर बुद्धदासने सब गहना, कपड़ा-लत्ता और धन-माल छीन-कर लड़के और बहूको घरसे निकाल दिया। इस समय बुद्धसिंहसे पद्मश्रीने कहा—नाथ, चलिए मेरी मांके पास किसी तरहकी कमी नहीं है। यह सुन बुद्धसिंह बोला—प्रिये, भिक्षा माँग खाऊँगा, पर ऐसी दशामें किसी सम्बन्धीके यहाँ न जाऊँगा। नीतिकारने कहा है—सिंह और व्याघ्रोंसे भरे हुए वनमें रहना, पेड़ोंके फूलपत्ते खाकर गुजारा करना, घासकी शय्या पर सोना और वृक्षोंकी छाल पहर-ओढ़कर जंगलहीमें रहना तो कहीं अच्छा है, पर

बन्धुओंके बीच धनहीन होकर रहना अच्छा नहीं। ऐसा विचार कर पद्मश्रीको साथ ले बुद्धसिंह परदेशको चल दिया। शहर बाहर होते ही इन्हें दो व्यापारी मिले। वे दोनों पद्मश्रीका रूप देखकर उस पर लुभा गये। दोनोंने उसके ले उड़नेकी ठानी। पर साथ ही उन्होंने मनमें विचारा कि हम दोनोंको तो यह किसी तरह मिल नहीं सकती। इसलिए एकको मार डालना अच्छा है। दूसरेने भी ऐसा ही विचारा। निदान दोनोंने विष मिलाकर भोजन बनाया और एकने एकको खिलाया। वे दोनों उस विष मिले भोजनको खाकर अचेत हो गये। उन दोनोंका थोड़ासा भोजन बच गया था। उसे पद्मश्रीके मना करने पर भी बुद्धसिंहने खालिया। वह भी उसी समय अचेत हो गया। पद्मश्री अपने पतिकी यह दशा देखकर बड़ी व्याकुल हुई। रो-रोकर बड़ी मुश्किलसे उसने सारी रात बिताई। सबेरे ही किसीने जाकर बुद्धदाससे कह दिया कि तुम्हारा लड़का बुद्धसिंह शहरके बाहर मरा पड़ा है। यह सुनकर बुद्धदासको बड़ा दुःख हुआ। उसी समय दौड़ा हुआ वह लड़केके पास आया। और उसकी वह दशा देखकर पद्मश्रीसे उसने कहा—अरी डाकिन, तूने ही मेरे लड़केको और इन बेचारे दोनों व्यापारियोंको खाया है! मुझे नहीं मालूम था कि तू ऐसी पिशाचिनी होगी, नहीं तो क्यों मैं इसे तेरे साथ आने देता। अब तेरी भी कुशल इसीमें है कि या तो तू मेरे लड़केको जिलादे, नहीं तो तुझे भी

मैं मार डालूँगा। ऐसा कहकर अचेत पड़े बुद्धसिंहको उसके पास रखकर वह लगा रोने। पद्मश्रीने मनमें विचारा—मेरे जो कर्मोंका उदय है, उसे कौन मेट सकता है? अस्तु, जो हो, उसने हाथ जोड़कर कहा—यदि मेरे हृदयमें जिनधर्मका पक्का श्रद्धान है, यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ, यदि मुझे रात्रिभोजनका त्याग है, तो हे—शासनदेवता, मेरे प्राणनाथ और ये दोनों व्यापारी सचेत हो जायँ! आश्चर्य है कि—इतना कहते ही पद्मश्रीके व्रतके प्रभावसे वे तीनों उठ बैठे। यह देखकर शहरके लोगोंने पद्मश्रीकी प्रशंसा कर कहा—इसे धन्य है, जो ऐसी सुन्दर होने पर भी यह पतिव्रता है। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। नीतिकारोंने कहा है कि राजनीतिमें निपुण राजा यदि धार्मिक हो तो उसमें आश्चर्य नहीं, वेद और शास्त्रोंको पढ़ा हुआ ब्राह्मण यदि पंडित हो, तो भी कुछ आश्चर्य नहीं; पर हाँ रूपवती और यौवनवती स्त्री यदि पतिव्रता हो, तो आश्चर्य है तथा निर्धन मनुष्य यदि पाप न करे तो आश्चर्य है। इस तरह प्रशंसा कर नगरके लोगोंने पद्मश्रीकी पूजा की। देवोंने पंचाश्चर्य किये। यह सब वृत्तान्त धाड़िवाहनने भी देखा। उसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह कहने लगा—जिनधर्मको छोड़कर और किसी धर्मसे इष्टसिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए इसी धर्मको स्वीकार करना चाहिए। ऐसा विचार कर अपने नयविक्रम नामके पुत्रको राज्य देकर उसने यशोधर मुनिके पास जिन-

दीक्षा लेली। उसके साथ और भी बहुतसे लोगोंने दीक्षा ली। बौद्धधर्मावलम्बी बुद्धदास और बुद्धसिंहने जैनी हो श्रावकोंके व्रत लिये। और कई लोगोंने अपने परिणामोंको ही सुधारा। इधर पद्मावती रानी, वृषभदास सेठकी स्त्री पद्मावती, तथा पद्मश्री आदिने सरस्वती आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण की।

यह कथा सुनाकर पद्मलताने अर्हद्दाससे कहा—प्राणनाथ, यह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मुझको दृढ़तर सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है। यह सुनकर अर्हद्दासने कहा—प्रिये, जो तुमने देखा है, मैं उसका श्रद्धान करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उस पर रुचि-प्रेम करता हूँ। अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। परन्तु कुन्दलताने सबकी हाँमें हाँ न मिलाकर कहा—यह सब झूठ है, मैं इसका श्रद्धान नहीं करती।

राजा, मंत्री और चोरने अपने अपने मनमें विचारा—पद्मलताकी प्रत्यक्ष देखी हुई बातको भी कुन्दलता झूठ बतलाती है। वास्तवमें यह बड़ी पापिनी है। राजाने कहा—सबेरे ही मैं इसे गधे पर चढ़ाकर शहरसे बाहर निकाल दूँगा। चोरने कहा—दुष्टोंका ऐसा स्वभाव ही होता है।

७–कनकलताकी कथा ।

पद्मलताकी कथा सुनकर अर्हद्दासने कनकलतासे कहा—प्रिये, तुम भी अपने सम्यक्त्वके प्राप्तिका कारण बतलाओ। कनकलता तब यों कहने लगी—

अवंति देशमें उज्जयिनी नगरी है। उसमें नरपाल नामका राजा था। उसकी रानी मदनवेगा थी। राजमंत्रीका नाम मदनदेव था। मंत्रीकी स्त्रीका नाम सोमा था। इसी नगरीमें समुद्रदत्त नामका एक सेठ रहता था। सेठकी स्त्रीका नाम सागरदत्ता था। इसके एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रका नाम उमय और पुत्रीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता कौशाम्बीके रहनेवाले जिनदत्त श्रावकको व्याही गई थी। उमय बड़ा व्यसनी था। माता-पिताने उसे बहुतेरा मना किया, पर उसने व्यसनोंको न छोड़ा। उन्होंने दुखी होकर सोचा—सच है पूर्व जन्ममें उपार्जन किये कर्मोंको कोई नहीं मेट सकता।

उमय हर रोज शहरमें चोरी किया करता था। एक दिन गस्त लगानेवाले सिपाहीने उसे चोरी करते पकड़ लिया। वह उमयको मारता, पर समुद्रदत्तके कहनेसे उसने उसे छोड़ दिया। इसी तरह सिपाहीने कई बार चोरी करते उसे पकड़ा

और छोड़ दिया। उभयकी यह दशा देखकर सिपाहीने सोचा—एक पेटसे पैदा हुए सब एकसे नहीं होते। जिनदत्ता और उभय दोनों एक पेटके बहिन-भाई हैं। पर बेचारी जिनदत्ता कितनी सीधी-साधी और यह ऐसा पापी है।

उभयने बार बार मना करने पर भी जब न माना तो सिपाही एक दिन लाचार हो उसे राजाके पास लेगया। राजासे उसने कहा—महाराज यह नगरसेठ समुद्रदत्तका लड़का है। उभय इसका नाम है। यह बड़ा चोर है। इसे हजारों बार मना करने पर भी इसने चोरी करना न छोड़ा। अब जैसा आप उचित समझें करें। राजाने कहा—जब इसमें समुद्रदत्तका एक भी गुण नहीं तब यह उसका लड़का कैसे कहा जा सकता है। राजाने समुद्रदत्तको बुलाकर कहा—सेठ महाशय, इस दुष्टको घरसे निकाल बाहर कीजिए। अन्यथा इसके साथ आप भी नाहक खराब होंगे। आपकी मान-मर्यादामें बट्टा लगेगा। दुर्जनके संसर्गसे सज्जनोंको भी दोष लग जाया करता है। सीताका हरण रावणने किया था, परन्तु बाँधा गया था समुद्र। इसलिए कि वह लंकाके पास ही था।

समुद्रदत्तने विचारा—साधुओंको दुर्जनोंकी संगति कष्टके लिए ही होती है। पानीकी घड़ीका बर्तन तो पानीमें डूबकर समय बतलाता है, पर ठोका जाता है पासमें लगा हुआ घंटा।

इसके बाद उसने अपनी स्त्रीसे कहा—अब उभयको घरसे निकाल देना ही अच्छा है। क्योंकि चोरसे

घूस लेना, उससे प्रीति रखना, चोरीका माल खरीदना, अथवा चोरीके मालमेंसे हिस्सा लेना इन बातोंको समझदार लोग बहुत जल्दी समझ लेते हैं—ऐसी बातोंका पता उन्हें शीघ्र लग जाता है। जब उमय घरमें रहेगा तो उससे हर तरहका सम्बन्ध रहेगा और उससे बड़े भारी अनर्थके होनेकी संभावना है। इसीलिए नीतिकारोंने कहा है कि कुलकी रक्षाके लिए कुलके उस आदमीको ही त्याग देना अच्छा है जिससे कुलमें कलंक लगता हो। अगर हम उमयको न निकालेंगे तो शहरके सब लोगोंसे विरोध होगा और बहु-तोंके साथ विरोध अच्छा नहीं। क्योंकि चीटियाँ बड़े भारी सर्पको भी खा डालती हैं। ऐसा विचार कर समुद्रदत्तने उमयको घरसे निकाल दिया। उमयकी माको उसके निकाले जानेसे बड़ा दुःख हुआ। वह विचारने लगी—जिसका भाग्य अच्छा होता है उसे समुद्रके उस पारसे भी वस्तु प्राप्त हो जाती है और जिसका भाग्य बुरा है उसकी हथेली पर रखी हुई वस्तु भी चली जाती है।

उमय घरसे निकल कर एक व्यापारीके साथ कौशाम्बीमें अपनी बहिन जिनदत्ताके पास गया। लेकिन उमयकी बद-नामी सब जगह फैल चुकी थी। इसलिए उसकी बहिनने भी उसे अपने घरमें न घुसने दिया। उत्तम विद्या, अनोखी बात, बदनामी, कस्तूरीकी गंध, आदि बातें पानीमें डाली हुई तेलकी बूँदकी तरह सब जगह फैल जाती हैं।

उमयने विचारा—मैं बड़ा अभागा हूँ जो यहाँ पर भी आफ़तने मेरा पिंड न छोड़ा। नीतिकारने ठीक कहा है, कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जाता है आफ़तें भी वहीं पहुँच जाती हैं। बेचारे एक गंजे सिरके आदमीको बड़ी तेज़ धूप लग रही थी। वह बेलके पेड़ तले जा खड़ा हुआ। उसने विचारा—यहाँ मुझे धूप न लगेगी; लेकिन ऊपरसे एक बड़ा बेल गिरा और गंजेकी खोपड़ी फूट गई।

एक मल्लाहने एक मछलीको पकड़ा तो बड़े जोरसे, पर मछली उसके हाथोंसे निकल गई, निकल कर वह जालमें गिरी। जालसे भी किसी तरह वह निकल गई, पर निकलते ही उसे झटसे बगुला निगल गया। मतलब यह कि जब भाग्य ही उल्टा होता है तब मनुष्य आपत्तिसे बच नहीं सकता। इससे उमयको बड़ा वैराग्य हुआ। वह विचारने लगा—पराधीन रहना भी बड़ा कष्टदायक है। देखो, सम्पूर्ण तारामंडल जिसका परिवार है, जो औषधियोंका मालिक है, जिसका शरीर अमृतमय है और जो स्वयं प्रकाशमान है। ऐसा चन्द्रमा भी सूर्यका उदय होनेपर फीका पड़ जाता है; सच है दूसरेके घर जानेसे सबको नीचा देखना पड़ता है। ऐसा विचार कर वह जिन मंदिरमें पहुँचा। वहाँ उसने श्रुतसागर मुनिसे धर्मका उपदेश सुनकर सप्त व्यसनके त्याग पूर्वक दर्शन-प्रतिमा धारण कर श्रावकोंके व्रत लिये। उमय अब सच्चा श्रावक हो गया। इसके सिवा उसने अजान फलोंके

खानेका भी त्याग किया। ग्रन्थकार कहते हैं—गुणवानके संसर्गसे गुणहीन भी गुणी हो जाता है। थोड़ीसी सुगंध सारे घरको सुगन्धित कर देती है।

उभयकी बहिनने जब सुना कि उभयने व्यसनोंको छोड़ दिया—अब वह सदाचारी हो गया, तब वह बड़े आदरसे उसे अपने घर पर लाई और बहुतसा धन भी उसने उसे दिया। यह ठीक ही है, क्योंकि सुमार्ग पर चलनेवालेकी पशु भी सहायता करते हैं, और कुमार्गीको सगा भाई भी छोड़ देता है। सच्चरित्र मनुष्यों पर आई हुई विपत्ति बहुत दिनोंतक नहीं ठहरती। क्योंकि हाथोंके आघातसे गिरा गेंद फिर भी उठता ही है।

एक दिन उज्जैनके कुछ व्यापारी कौशाम्बीमें आये। उन्होंने उभयको सदाचारी देखकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—भाई, तू धन्य है। अच्छा हुआ जो तुझे ऐसी उत्तम संगति मिल गई, जिससे तू ऐसा योग्य बन गया। क्योंकि उत्तम, मध्यम और जघन्य गुणोंकी प्राप्ति उत्तम, मध्यम और जघन्य मनुष्योंकी संगतिसे ही हुआ करती है। देख, गरम लोहे पर पानी पड़नेसे उसका नाम निशान भी नहीं रहता, पर कमलके पत्ते पर पड़ा हुआ वही पानी मोती जैसा दिखाई देने लगता है और वही पानी यदि स्वाति नक्षत्रमें समुद्रकी सीपमें पड़ जाय तो मोती ही बन जाता है। उभय, तुम्हें धर्मात्मा देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता होती है।

तुमने बहुत अच्छा काम किया जो व्यसनोंको छोड़कर धर्मको स्वीकार किया। क्योंकि जैसे चन्द्रमाके विना रात्रि की, और कमलोंके विना सरोवरकी शोभा नहीं उसी तरह धर्मके विना जीवनकी भी शोभा नहीं।

उमय भी तब बेचनेके लिए बहुतसा सामान खरीद कर अपने कुछ मित्रोंको साथ लिए उन व्यापारियोंके साथ अपनी जन्मभूमि उज्जयिनीकी ओर चला। उमय अपने माता-पिताको देखनेके लिए बड़ा उत्सुक हो रहा था। इसलिए वह उन व्यापारियोंका साथ छोड़कर अपने मित्रोंको लिए आगे बढ़ा। चलते चलते रात हो गई। उमयको रास्ता मालूम न होनेसे वह एक भयानक जंगलमें जा पहुँचा। उन सबने रात वहीं विताई। सवेरा हुआ। उमयके मित्रोंको भूख लगी। उन्हें कहींसे देखनेमें अच्छे, रसीले, पर मरणके कारण ऐसे कुछ किंपाक-फल (विष-फल) मिल गये। उन फलोंको उन्होंने खालिया। उमयको भी वे फल दिये गये। उमयने पूछा—इन फलोंका नाम क्या है ? उसके मित्रोंने कहा—तुम्हें नामसे क्या मतलब ? जो फल कड़वे हों, नीरस हों, और वेस्वाद हों उन्हें न खाना चाहिए इनके सिवाय और फलोंको खाकर अपनी भूख मिटा लेनी चाहिए। उमयने कहा ठीक है, पर मैं विना नाम जाने किसी फलको नहीं खा सकता। मेरा ऐसा नियम है। यह कहकर उमयने उन फलोंको नहीं खाया। फल खानेके थोड़ी ही देर बाद उमयके मित्र

अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े। यह देखकर उमयको बड़ा खेद हुआ। वह सोचने लगा—हाय! कौन जानता था कि ये फल हलाहल विष भरे होंगे। उमय तो इसी विचारमें डूब रहा था कि इधर उसके नियमकी परीक्षा करनेके लिए वनदेवता एक सुन्दर स्त्रीका रूप लेकर आई और उमयको एक फलोंसे लदा वृक्ष दिखाकर उसने कहा—पथिक, तूने इस कल्पवृक्षके फलोंको क्यों नहीं खाया? तेरे मित्रोंने जो फल खाये हैं वे तो विषफल थे, पर यह कल्पवृक्ष है। इसके फल पुण्य बिना नहीं मिलते। इसके फलोंको जो एक बार खा लेता है, उसके सब रोग दूर हो जाते हैं। वह फिर अमर हो जाता है—उसे कभी कोई दुःख नहीं होता। और उसका ज्ञान इतना बढ़ जाता है कि वह सब चराचर वस्तुओंको जानने लग जाता है। मैं पहले बहुत ही बूढ़ी थी। सो इन्द्र दया करके इस वृक्षके फल खानेको मुझे यहाँ रख गया। देख, मैं इन्हीं फलोंको खाकर ऐसी जवान हो गई हूँ। यह सब सुनकर उमयने कहा—बहिन, बिना जाने फलोंको खानेकी मुझे प्रतिज्ञा है। इसलिए मैं तो इन फलोंको हर्गिज नहीं खा सकता। नाहक तुम इनकी इतनी तारीफ करती हो। जो ललाटमें लिखा होगा, वही तो होगा। फिर व्यर्थ अधिक बोलनेसे लाभ क्या? उमयकी धीरताको, उसके नियमकी निश्चलता देखकर वनदेवताने उससे कहा—उमय, तेरी प्रति

निश्चलताको देखकर मैं तुझ पर प्रसन्न हुई । तुझे जो इच्छा हो वैसा वर माँग । उमयने तब वनदेवतासे कहा—यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो मेरे इन अचेत पड़े साथियोंका विष दूरकर इन्हें सचेत कर दो और उज्जयिनीका रास्ता बतादो । 'तथास्तु' कह कर वनदेवताने उन्हें सचेत कर दिया । नीतिकार कहते हैं—उद्योग, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये छह बातें जिसके पास हैं, उसकी देव भी सहायता करते हैं ।

वे सब सचेत होकर उमयसे कहने लगे—भाई उमय, तुम्हारे प्रसादसे हम लोग आज जी गये । तुम्हारे व्रतका माहात्म्य हमने आँखों देख लिया । सच तो यह है कि तुम्हें कुछ भी असाध्य नहीं है ।

वनदेवताने उन्हें उज्जैनका मार्ग भी बता दिया। कुछ दिनों बाद मित्रोंको साथ लिए उमय अपने घर आ पहुँचा। उसे सदाचारी देखकर उसके माता-पिता, राजा, मंत्री परिवार तथा नगरके लोगोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—भाई उमय, तू धन्य है, उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे तू भी पूज्य हो गया । नीतिकारोंने ठीक कहा है कि उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे बुरा मनुष्य भी गौरवको प्राप्त कर लेता है । यही कारण है कि फूलोंके साथमें गुँथा हुआ धागा बड़े बड़े पुरुषोंके मस्तक पर पहुँच जाता है । दूसरे दिन नगरदेवताने आकर एक बहुत सुन्दर रत्नमयी मंडप बनाया और उसमें उमयको बैठाकर

उसका अभिषेक किया, पूजा की और पंचाश्चर्य किये यह सब वृत्तान्त नगरके लोगोंने तथा राजाने देखकर कहा—जिनधर्म ही सब आपत्तियोंको दूर कर सकता है, दूसरा धर्म नहीं। जैसा कि कहा है—इस लोक और परलोकमें धर्म ही जीवोंका हित करनेवाला है, अन्धकारके नष्ट करनेको सूर्य है, सब आपत्तियोंको दूर करनेमें समर्थ है, परमनिधि है, अनाथ-असहायोंका बन्धु है, विपत्तिमें सच्चा मित्र है और संसाररूपी विशाल मरुभूमिमें कल्पवृक्ष समान है। धर्मसे बढ़कर संसारमें और कोई वस्तु नहीं है। ऐसा विचार कर नरपाल नृपतिने अपने पुत्रको राज्यपद और मंत्रीने अपने पुत्रको मंत्रीपद देकर दोनोंने सहस्रकीर्त्ति मुनिके पास जिन-दीक्षा ग्रहण करली। इनके साथ साथ राजसेठ समुद्रदत्त, उमय तथा और बहुतसे लोगोंने भी दीक्षा ग्रहण की। कुछ लोगोंने श्रावकोंके व्रत लिये और कुछने अपने परिणामोंको ही सरल बनाया। इनके बाद ही मदनवेगा रानी, मन्त्रि-पत्नी सोमा, समुद्रदत्तकी स्त्री सागरदत्ता तथा और बहुतसी स्त्रियोंने भी अनन्तमती आर्यिकाके पास जिन-दीक्षा ग्रहण की और कितनी ही स्त्रियोंने श्रावकोंके व्रत लिये।

इस कथाको कहकर कनकलताने अर्हद्दाससे कहा—प्राणनाथ, यह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मुझे दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—प्रिये, जो तुमने देखा है, उसका मैं श्रद्धान करता हूँ उसे चाहता हूँ

और उसमें रुचि करता हूँ। अर्हद्दासकी और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर कुन्दलताने पहलेकी तरह ही दृढ़तासे कहा—यह सब झूठ है। मैं इस पर श्रद्धान नहीं करती। राजा, मंत्री और चोर मनमें विचारने लगे—कनकलताकी प्रत्यक्ष देखी हुई बातको भी यह झूठी बतला रही है, यह बड़ी पापिनी है। राजाने कहा—मैं सबेरे ही इसे गधे पर चढ़ाकर शहरसे निकाल दूँगा। चोरने सोचा—जो किसीको झूठा ही दोष लगाता है, वह नीच गतिका पात्र होता है। मनुष्यको दूसरोंके विद्यमान गुणोंको छुपाना तथा अविद्यमान दोषोंको कहना उचित नहीं। जो ऐसा करते हैं उनका जन्म नीच गोत्रमें होता है।

८—विद्युल्लताकी कथा।

नकलताकी कथा सुनकर अर्हद्दासने विद्युल्लतासे कहा—प्रिये, अब तुम भी अपने सम्यक्त्वका कारण सुनाओ।

विद्युल्लताने तब यों सुनाना आरंभ किया—भरतक्षेत्रमें कौशाम्बी नगरी है। उसका राजा सुदंड था। विजया इसकी रानी थी। मंत्रीका नाम सुमति था। गुणश्री मंत्रीकी स्त्री थी। सूरदेव राजसेठ था गुणवती उसकी स्त्री थी। एक बार सूरदेव

व्यापारके लिये मङ्गलदेशमें गया और वहाँसे वह एक सुन्दर घोड़ी खरीद कर लाया। उसने उस घोड़ीको राजाकी भेट किया। राजाने प्रसन्न होकर सेठको बहुत धन दिया, उसका सम्मान किया और उसकी बहुत प्रशंसा की।

एक समय सूरदेवने गुणसेन मुनिको विधिपूर्वक दान दिया। दानके फलसे देवोंने सूरदेवके घर पंचाश्चर्य किये।

इसी कौशाम्बीमें सागरदत्त नामका एक और सेठ रहता था। पर यह निर्धन था। इसकी सब संपत्ति नष्ट हो गई थी। इसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था और पुत्रका समुद्रदत्त। समुद्रदत्त सूरदेवके दानके फलसे जो पंचाश्चर्य हुए उन्हें देखकर मनमें विचारने लगा—मैं गरीब हूँ तब मुनियोंको दान कैसे दे सकता हूँ। अस्तु, मैं भी कभी सूरदेवकी तरह धन कमाकर दान दूँगा। सच है—धनके विना कुछ नहीं हो सकता। जिसके पास धन है उसके सभी मित्र हैं, सभी बन्धु हैं, वही मनुष्य है, और पंडित भी वही है। इस संसारमें पराये आदमी भी धनवानोंके स्वजन हो जाते हैं, और गरीबोंके स्वजन भी पराये हो जाते हैं। ऐसा विचार कर कुछ मित्रोंको साथ लिए वह मंगल देशको चला। रास्तेमें मित्रोंने उससे पूछा—भाई, जान पड़ता है तुम तो दूर देशकी यात्राके लिए चल रहे हो। तुमने हमसे चलते समय तो यह हाल नहीं कहा। अच्छा, तब यह तो बतलाओ कि इतने दूर देश चलते किस लिए हो? समुद्रदत्त

बोला—समर्थोंको भी क्या कोई बोझा लगता है ? व्यापारियोंके लिए क्या कोई देश दूर है ? विद्वानोंके लिए क्या कोई विदेश है ? और मीठे बोलनेवालोंका क्या कोई शत्रु होता है ? कौआ, कायर पुरुष, और मृग, परदेश जानेसे डरते हैं—आलस और प्रमादसे वे अपने ही स्थानमें पड़े पड़े मर जाते हैं। इस तरह बात करते करते वे लोग पलाश नामके गाँवमें जा पहुँचे। वहाँ समुद्रदत्तने उनसे कहा—भाइयो, अब हमें यहाँसे साथ छोड़ देना पड़ेगा। इसलिए जहाँ कहीं हमारा माल बिक सके उन शहरों और गाँवोंमें माल बेच कर और खरीदने लायक माल खरीद कर तीन वर्ष बाद फिर हमें इसी स्थान पर आकर मिल जाना चाहिए।

ऐसी सलाह करके समुद्रदत्तके साथी वहाँसे चले गये। समुद्रदत्त रास्तेका हारा-थका था; इसलिए वह उसी गाँवमें रह गया। समुद्रदत्त जब अपने साथियोंसे बिछुड़ा तो उसे यह प्रवास अब बड़ा ही कष्टकर जान पड़ने लगा। नीतिकारने कहा है—पहले तो मूर्ख रहना तथा युवा अवस्थामें दरिद्रताका होना ही दुःख है, परन्तु दूसरेके घर रहना और परदेशमें जाना तो उससे भी अधिक दुःखदायक है।

इस गाँवमें एक अशोक नामका गृहस्थ रहता था। वह घोड़ोंका व्यापार करता था। इसकी स्त्रीका नाम वीतशोका था। इसके एक लड़की थी। उसका नाम कमलश्री था।

अशोक अपने घोड़ोंकी रखवालीके लिए एक नौकरकी खोजमें था। यह बात समुद्रदत्तको मालूम हुई। उसने अशोकके पास आकर कहा—मैं तुम्हारे घोड़ोंकी रखवाली किया करूँगा। कहिए आप मुझे क्या नौकरी देंगे? नीतिकार कहते हैं—मनुष्यके पास जबतक धन रहता है तभीतक उसमें गुण और गौरव रहता है। और जहाँ वह याचक बना कि उसके गुण और गौरव सभी नष्ट हो जाते हैं। यही दशा समुद्र-दत्तकी हुई। एक सेठका लड़का आज घोड़ोंकी सईसी करने पर उतारू हुआ। अस्तु।

समुद्रदत्तकी बात सुनकर अशोकने उससे कहा—दिनमें दो बार भोजन और छह महीनेमें एक साफा, एक कम्बल और एक जूता जोड़ा तथा तीन वर्षमें इन घोड़ोंमेंसे तुम्हारे मनचाहे दो घोड़े, यह नौकरी तुम्हें मिलेगी। बोलो, मंजूर है? समुद्रदत्तने अशोककी यह नौकरी स्वीकार करली। अब वह घोड़ोंकी बड़ी सम्हालसे रखवाली करने लगा। नीति-कार कहते हैं—नौकर आदमी तरक्कीके लिए स्वामीकी अधिक सेवा-शुश्रूषा करता है और मौके पर अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करता। सुखकी आशासे दुःख तक उठाता है। सचमुच नौकरसे बढ़कर कोई मूर्ख नहीं है।

समुद्रदत्त अशोककी लड़की कमलश्रीको प्रतिदिन अनेक प्रकारके मीठे मीठे फल-फूल और कंद ला-लाकर दिया करता था, और उसे अपना मनोहर गाना सुनाया करता था।

निदान कुछ समयमें समुद्रदत्तने कमलश्रीको अपने वशमें कर लिया। वह भी उसे हर तरहसे चाहने लगी। नीतिकार कहते हैं—जब वनमें भील लोग गा-गाकर बड़े तेज भागनेवाले हरिणों तकको वशमें कर लेते हैं तब मनुष्य मनुष्यको अपनी गान-कलासे वशमें करले तो आश्चर्य क्या? सच है गुणों द्वारा कौन कार्यसिद्ध नहीं होता? बालिकाएँ खेलके समय अच्छे अच्छे फलादिक खानेको देनेसे, जवान स्त्रियाँ अच्छे गहने और कपड़ोंसे, मध्यवया स्त्री (मध्यमा नायिका) सुदृढ़ संभोग कलासे और वृद्ध स्त्रियाँ गौरवके साथ उनसे मीठी मीठी बातें करनेसे वशमें होती हैं। यही कारण था कि कमलश्री गाने और फलादिकके देनेसे समुद्रदत्तके वश हो गई। कमलश्रीके मनमें अब यही भावना उठने लगी कि मेरा पति यही हो। नीतिकारने ठीक कहा है—कि आगको ईंधनसे संतोप नहीं होता, नदियोंसे समुद्रकी तृप्ति नहीं होती, प्राणियोंको खाते खाते यमराज नहीं अघाता और स्त्रियोंको चाहे जितने पुरुष मिलते जायँ पर उन्हें चैन नहीं पड़ती—हर समय वे दूसरोंके लिए ही तड़फती रहती हैं।

समुद्रदत्तको रहते पूरे तीन वर्ष हो गये। एक दिन वह कमलश्रीसे बोला—प्यारी, तुम्हारी कृपासे मेरे दिन बड़े सुखसे बीते। अब मेरी नौकरीके दिन पूरे हो गये, सो मैं अपने देश जाऊँगा। मैंने जो तुमसे कभी बुरा-भला कहा हो—मेरी जबानसे भूलमें कुछ बेजा निकल गया हो, तो तुम मुझे क्षमा करना।

यह सुनते ही कमलश्रीके मुँह पर एक साथ उदासी छागई। वह गिड़गिड़ा कर बोली—प्राणनाथ, मैं आपके विना नहीं जी सकती ? इसलिए मैं तो आपहीके साथ चलूँगी। समुद्रदत्तने तब उससे कहा—प्यारी, तुम धनवान्‌की लड़की हो, सुकुमार हो, और मैं एक गरीब रास्तागिर हूँ। मेरे साथ रहकर तुम्हें क्या सुख होगा ? घर छोड़कर बाहर तुम्हें सुख न मिलेगा कमलश्री ! इसलिए मेरे साथ तुम्हारा जाना ठीक नहीं है। देखो, निर्धनोंको प्रायः कष्ट उठाने पड़ते हैं और उनकी ऐसी दशा देख स्त्रियाँ भी उन्हें छोड़कर नौ-दो-ग्यारह हो जाती हैं। कमलश्रीने कहा—मैं अधिक क्या कहूँ, पर यह याद रखिए कि मैं आपके विना क्षण भर भी नहीं जी सकती। बहुत मना करने पर भी जब कमलश्रीने न माना, तब समुद्रदत्तने उससे कहा—अच्छा तब चलो। जो तुम्हारे भाग्यमें होगा, वह होगा। क्योंकि जो होनहार होती है वह नारियलके फलमें पानीकी तरह कहीं न कहींसे आही जाती है, और जो जानेवाला होता है वह हाथीके खाये कैथके भीतरके गूदेकी तरह किसी प्रकार चला ही जाता है।

एक दिन मौका पा कमलश्रीने समुद्रदत्तको अपने पिताके घोड़ोंका भेद बताकर कहा—मेरे पिताके इन घोड़ोंमें दो घोड़े सबसे अच्छे हैं। उनमें एक आकाशमें चलता है, और एक जलमें। आकाशगामी सफेद जलगामी लाल है। और ये दोनों बिल्कुल दुबले-पतले हैं। समुद्रदत्तने तब अपनी नौक-

रीके बदलेमें उन्हीं दोनों घोड़ोंके लेनेका निश्चय किया। कमलश्रीके इस रहस्यके बतानेसे प्रसन्न होकर वह मनमें विचारने लगा—मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ, क्योंकि बिना पुण्यके मनोरथोंकी सिद्धि नहीं होती। इसी समय समुद्रदत्तके मित्र भी अपने अपने मालको बेच-बिचाकर और अपने देशमें बिकने योग्य अच्छा अच्छा नया माल खरीद कर देशान्तरसे लौट आये। वे समुद्रदत्तसे मिले। सभीने परस्परको जिमाया और योग्य वस्तुएँ एकने एककी भेंट कीं। नीतिकार कहते हैं—खाना-खिलाना, देना-लेना और अपनी गुप्त बात कहना या सुनना, ये छह मित्रताके लक्षण हैं।

एक दिन समय पाकर समुद्रदत्तने अपने मालिक अशोकके पास जाकर कहा—स्वामी, अब मेरे तीन वर्ष पूरे हो गये, और मेरे साथी भी परदेशसे लौट आये हैं। इसलिए मेरी तनख्वाह आप दे दीजिए, जिससे कि मैं अपने देश चला जाऊँ।

अशोकने कहा—ठीक है, इन घोड़ोंमेंसे जो तुम्हें पसंद हों, दो घोड़े लेलो। अशोककी आज्ञा पा समुद्रदत्तने उन्हीं दोनों आकाश गामी और जलगामी घोड़ोंको छाँट लिया। यह देखकर अशोकको बड़ी चिन्ता हुई।

उसने समुद्रदत्तसे कहा—अरे-ओ मूर्खोंके अगुआ! सचमुच तू बड़ा ही मूर्ख है। तू कुछ नहीं जानता। बतला तो इन बदसूरत और दुबले-पतले घोड़ोंको लेकर क्या करेगा?

दूसरे कीमती और मोटे-ताजे, सुन्दर घोड़ोंको तूने क्यों न लिया? ये तो आजकलमें ही मर जायँगे। समुद्रदत्तने कहा—जो कुछ हो, मैंने तो जिनको एक बार ले लिया सो ले लिया। मुझे दूसरे नहीं चाहिए। यह सुनकर पास बैठे हुए लोगोंने कहा—यह मूर्ख और हठी है। इसको समझाना व्यर्थ है। नीतिकारने कहा है—जलसे अग्नि शान्त हो सकती है, छातेसे घाम बचाया जा सकता है, दवाईसे रोग, और मंत्रसे विष दूर किया जा सकता है, अंकुशसे मदोन्मत हाथी और लाठीसे गाय तथा गधा वशमें किया जा सकता है, पर मूर्ख किसी तरह वशमें नहीं किया जा सकता। कहनेका मतलब यह है कि शास्त्रोंमें सबका इलाज है, पर मूर्खोंका कोई इलाज नहीं।

अशोक बोला—यह बड़ा ही अभागा है और अभागेको अच्छी वस्तु भी बुरी मालूम देती है। यह कहकर वह घर पर आया और घरके सब लोगोंसे उसने पूछा—कि समुद्रदत्तको घोड़ोंका भेद किसने दिया? घरके सब लोगोंने कसमें खा-खाकर अशोकको विश्वास कराया कि हमने घोड़ोंका भेद किसीको नहीं बताया। इतनेमें किसी पाजीने आकर अशोकसे कमलश्रीका सारा हाल कह सुनाया। अशोक सुनकर मनमें कहने लगा—कमलश्री बड़ी दुष्टा है। जान पड़ता है इसीने समुद्रदत्तको घोड़ोंका भेद बताया है। नीतिकारने ठीक कहा है कि जलमें तेल, पात्रमें दान,

बुद्धिवानमें शास्त्र और दुष्टसे कहा हुआ गुप्त रहस्य, ये सब बातें बहुत जल्दी फैल जाती हैं। इन वस्तुओंका स्वभाव ही ऐसा है। स्त्रियाँ जो न करें सो थोड़ा है। वे बदमाशोंके साथ रमती हैं, कुलकी मर्यादाको तोड़ देती हैं, और गुरुजन, मित्र, पति, पुत्र वगैरह किसीको कुछ नहीं समझतीं। सुख, दुःख, जय, पराजय और जीवन-मरणकी बातोंको जो जानते हैं, ऐसे बड़े बड़े तत्त्वज्ञानी भी इन स्त्रियोंके जालमें फँस जाते हैं। झूठ, साहस, माया, मूर्खता, लोभ, अप्रेम और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं।

अशोकने विचारा—यदि मैं इसे घोड़े न दूँ तो प्रतिज्ञा भंग होती है और बड़े आदमीको अपनी प्रतिज्ञाका भंग कभी न करना चाहिए। नीतिकारने कहा है—दिग्गज, कूर्मावतार, कुलपर्वत और शेषनाग आदिसे धारण की हुई यह पृथ्वी तो चलायमान हो सकती है, पर महा पुरुषोंकी प्रतिज्ञा कभी नहीं डिगती।

अशोकने और भी विचारा—यदि मैं कमलश्री पर क्रोध करता हूँ, तो उसे घरका सब रत्ती रत्ती हाल मालूम है, तब संभव है कि वह जमीनमें गड़े हुए धनादिकको भी किसीको बतलादे। क्योंकि रसोइया, कवि, वैद्य भाट (चारण), शस्त्रधारी, स्वामी, धनी, मूर्ख और अपना भेद जाननेवाले पर क्रोध करके उन्हें क्रोधित करना ठीक नहीं। अन्यथा ये मौका पाकर बड़ा अनर्थ कर डालते हैं। ऐसा विचार कर

अशोकने समुद्रदत्तको वे दोनों घोड़े दे दिये और शुभ मुहूर्तमें उसके साथ कमलश्रीका विवाह भी कर दिया। ब्याहके कुछ दिनों बाद अशोकने समुद्रदत्तको विदा किया। अपने मित्रों और कमलश्रीको लेकर समुद्रदत्त रवाना हुआ।

समुद्रदत्त समुद्रयात्रा करे इसके पहले ही अशोकने आकर जहाजके मल्लाहोंसे कहा—समुद्रदत्तके पास दो घोड़े हैं, सो तुम अपने किरायेके बदलेमें उससे दोनों घोड़ोंको माँगना। मल्लाहोंने कहा—पर यह हो कैसे सकता है? जो हमारा वाजिवी किराया होगा, हम तो वही लेंगे और ज्यादा मिल भी कैसे सकता है?

अशोक बोला—तुम्हें इससे क्या मतलब? तुम माँगना तो सही! मल्लाहोंने कहा—अच्छी बात है। इसके बाद अशोक कमलश्रीको कुछ उपदेश देकर अपने घर लौट आया।

समुद्रदत्त अपने मित्रोंके साथ समुद्रके किनारे पर आया। उसने देखा समुद्र बड़ी शोभाको धारण किये हुए है। चारों ओर उसमें तरंगे उठ रहीं हैं, तैरते हुए फेन-पिण्ड द्वारा वह चन्द्रमाकी शोभाको धारण कर रहा है, उसमें मगर, घड़याल और बड़े बड़े मच्छ इधरसे उधर दौड़ लगा रहे हैं। वह इस समय ठीक ऐसा मालूम पड़ता है जैसे प्रलयकालके मेघ उमड़ रहे हों।

समुद्रदत्तने मल्लाहोंसे जहाजका किराया पूछा। उन्होंने वे दोनों घोड़े माँगे। उनकी यह धीठता देखकर समुद्रदत्तको

बड़ा क्रोध आया। उसने उन मल्लाहोंसे कहा—तुम लोग बड़े ही नीच हो। जो ठीक किराया है, उससे ज्यादा एक फूटी कौड़ी भी मैं तुमको न दूँगा। घोड़ोंकी तो बात दूर रहे। तब मल्लाहोंने कहा—तो हम अपने जहाजमें बैठाकर तुम्हें उस पार भी न पहुँचा सकेंगे। यह देखकर कमलश्रीने कहा—प्यारे, इस झमेलेमें आप क्यों पड़े हो? चलिए, जलगामी घोड़े पर सवार हो समुद्र पार उतरें और अपने घर चलें। और इस आकाशगामी घोड़ेकी लगाम पकड़ लीजिए, सो यह आकाशमें उड़ता चला जायगा। समुद्रदत्तने ऐसा ही किया। वह थोड़ीही देरमें अपने घर पहुँच गया।

एक दिन समुद्रदत्त राजासे मिलने गया। उसने उस समय अपने आकाशगामी घोड़ेको राजाकी भेंट किया। राजाने प्रसन्न हो उसको आधा राज्य दिया और अपनी अनंगसेना नामकी राजकुमारीका उसके साथ व्याह भी कर दिया। समुद्रदत्त अब बड़े सुखसे रहने लगा, दान-पूजा आदि पुण्य-कर्म करने लगा और मुनियोंको आहार देने लगा। सुदंड राजाने वह घोड़ा अपने परम मित्र सूरदेव सेठको रक्षाके लिए सौंप दिया। नीतिकार कहते हैं—इसमें आश्चर्य नहीं कि इतने बड़े राजाकी सूरदेवसे मित्रता हो। क्योंकि सूरदेव बड़ा सज्जन था। इसलिए राजाका उस पर बड़ा प्रेम था। राजा इस बातको जानता था कि सच्चा मित्र पापसे बचाता है, हितमें लगाता है, गुप्त बातोंको छुपाये रहता है, गुणोंको

प्रगट करता है और आपत्तिके समय साथ न छोड़कर सहायता करता है।

सूरदेव उस घोड़ेकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करता था। एक दिन सूरदेवने विचारा—यह घोड़ा आकाशगामी है, तब इसके द्वारा तीर्थयात्रा क्यों न की जाय? क्योंकि जब तक शरीर नीरोग है, बुढ़ापा नहीं आया, इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़ीं और आयु बाकी है, उसके पहले ही मनुष्यको अपने कल्याणके लिए यत्न करना उचित है। घरमें आग लगने पर कुआ खोदना किस कामका?

अपने निश्चयके अनुसार सूरदेव एक दिन आकाशगामी घोड़ेको पुचकार कर उस पर चढ़ा और चढ़नेके लिए उसने घोड़ेके ऐड़ लगाई। फिर क्या था, घोड़ा हवा होगया। सेठने सम्मेदशिखिर, गिरनार, शत्रुंजय आदि तीर्थोंकी वन्दना की।

सूरदेव इसी तरह हर एक पर्वके दिन अकृत्रिम चैत्यालय और निर्वाण भूमियोंकी वन्दना किया करता था। और धर्मपूर्वक समय बिताता था। सो ठीक ही है, क्योंकि बुद्धिमानोंका समय धर्मकार्योंमें बीतता है और मूर्खोंका सोने तथा लड़ाई-झगड़ोंमें बीतता है।

पल्ली नामकी एक सुन्दर पुरी है। उसके राजाका नाम पत्नीपति है। सूरदेव तीर्थयात्रा करनेको आकाशगामी घोड़े पर सवार होकर इसी पुरीपरसे जाया करता था। उसे जाना

देखकर किसी आदमीने पल्ली पुरीके राजा पल्लीपतिसे कहा—महाराज, कौशाम्बीमें सूरदेव नामका एक सेठ रहता है। उसके पास एक आकाशगामी घोड़ा है। ऊपर देखिए उसी घोड़े पर सूरदेव चला जा रहा है। नीतिकार कहते हैं—राजाके सम्बन्धका कोई छोटेसे छोटा भी काम हो-तो उसे इस तरह सभामें कहना उचित नहीं। राजाने उसकी यह बात सुनी, पर इस नीतिको विचार कर, कि भाट, स्तुति-पाठक, ओछा स्वभाववाले, नाई, माली और साधु-संन्यासियोंके साथ बुद्धिमानोंको सलाह करना ठीक नहीं, वे चुप हो रहे।

फिर एक दिन सूरदेवको उसी घोड़े पर चढ़े हुए जाता देखकर राजाने कहा—यह घोड़ा यद्यपि दुबला पतला है तथापि जान पड़ता है बड़ा गुणी है। इसलिए यह इस कृश अवस्थामें भी बड़ा ही सुन्दर दिखता है। नीतिकार कहते हैं—कई वस्तुएँ ऐसी भी हैं जो कृश ही शोभाको पाती हैं। जैसे शाण पर चढ़ाया रत्न कट-छँटकर छोटा रह जाता है, पर उसकी सुन्दरता और मूल्य बढ़ जाता है। युद्धमें हाथी शस्त्रोंसे बुरी तरह घायल होकर निर्मद हो जाता है, पर विजयलाभ करनेसे वह प्रशंसा किया जाता है। चौमासेमें पूर आई नदी शरद ऋतुमें घटकर बहुत थोड़ी रह जाती है—उसका जल कम हो जाता है, पर सुन्दरता वही धारण करती है, चौमासेकी नदी नहीं। द्वितीयाका चन्द्रमा भी बहुत

छोटा होता है, पर तारीफ उसीकी होती है। संयुक्त बाल-वधू यद्यपि शिथिल हो जाती है, पर सुन्दर गिनी जाती है। दाताओंका धन याचकोंको दान देनेसे घट जाता है, पर संसारमें उस दाताकी सब ही प्रशंसा करते हैं। कहनेका सार यह कि दुबला-पतला पन भी बुरा नहीं है। यह विचार कर राजाने अपने योद्धाओंसे कहा—जो कोई इस घोड़ेको लाकर मुझे देगा उसे मैं अपना आधा राज्य दूंगा और राजकुमारीको उसके साथ ब्याह दूंगा। नीतिकार कहते हैं—नीच मनुष्योंकी बुद्धि नीच कामोंमें बड़ी जल्दी स्फुरायमान होती है। उल्लुओंको अँधेरेहीमें दिखाई देता है। अस्तु। राजाकी यह बात सुनकर सब सुभटोंने अपने अपने मुँह नीचे कर लिये—किसीकी हिम्मत 'हाँ' करनेकी न हुई। परन्तु उनमेंसे कुन्तल नामके एक सुभटने आगे बढ़कर कहा—महाराज, मैं इस घोड़ेको लाने जाता हूँ।

राजाके सामने ऐसी प्रतिज्ञा कर कुन्तल चला गया। उसने घोड़ेकी प्राप्तिके लिए सेठके घरमें प्रवेश करनेके कई उपाय किये, पर उसे सफलता किसीमें न हुई। इससे उसे बड़ा कष्ट हुआ। आखिर उसे एक युक्ति सूझ गई। वह जैनी हो गया और एक गाँवमें कुछ दिनोंतक किसी मुनिके पास रहकर कपटसे कुछ थोड़ा बहुत लिख-पढ़ कर झूठा ही जैनधर्मका श्रद्धानी बन ब्रह्मचारी हो गया। अब वह सचित्त वस्तुओंका त्याग कर प्रासुक आहार लेने लगा,

दोनों बार सामायिक करने लगा, भूमि पर सोने लगा और छह छह आठ आठ उपवास करने लगा। लोग इसको ऐसा ज्ञानी ध्यानी देखकर मानने लगे—इसकी पूजा-प्रतिष्ठा करने लगे। सो ठीक ही है, नीच मनुष्य भी उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे पूज्य हो जाता है। गंगाके किनारेकी धूलको भी लोग पूजने लगते हैं।

एक दिन कुन्तल कौशाम्बीमें आकर सूरदेवके चैत्यालयमें ठहरा और मेरी आँखें आगई हैं, ऐसा बहाना कर उसने आंखों पर कपड़ा बाँध लिया। जब लोग उसे आहारके लिए कहते तब वह उनसे कहता कि मेरी आँखोंमें बड़ी पीड़ा है। मैं आहार न करूँगा-उपासा ही रहूँगा। क्योंकि जिसकी आँखोंमें, पेटमें और सिरमें पीड़ा हो, जिसको ज्वर आता हो और जिसके फोड़ा-फुंसी हो गये हों, तो ऐसे लोगोंको लंघन करना परमौषध है। जब सूरदेव पूजाके लिए मंदिरमें आया तो उसने मालीसे पूछा—यह कौन है? माली बोला—यह महा तपस्वी ब्रह्मचारी है। इसकी आँखोंमें बड़ी पीड़ा है। यह सुनकर सूरदेव उस कपटीके पास गया और वन्दना कर उसने कहा—महाराज, कृपाकर आप मेरे यहीं पारणा किया करें तो अच्छा हो। मैं आपकी आँखोंकी भी दवा करूँगा। दवाईके विना आपकी आँखें अच्छी न होंगी। उस मायावीने तब कहा—सेठजी, ब्रह्मचारियोंको किसीके घरमें रहना ठीक नहीं है—उनका तो ऐसी निराकुल जगहमें रहना ही

अच्छा है। सेठने कहा—जिसको राग-द्वेष नहीं है उसके लिए तो घर और वनमें भेद ही नहीं है। उसको तो जैसा घर वैसा ही वन। नीतिकारने कहा है—रागी मनुष्योंको वनमें भी दोष उत्पन्न हो जाते हैं और वैरागी घरहीमें पाँचों इन्द्रियोंका दमन कर सकता है। जो निन्द्य कार्यमें प्रवृत्त नहीं है और राग-द्वेषसे रहित है, उसको घर ही तपोवन है। इस प्रकार समझा-बुझाकर कुन्तलको सेठ अपने घर ले आया।

एक आदमीने कुन्तलकी धूर्तताको पहचान लिया। वह सेठसे बोला—सेठजी, यह ब्रह्मचारी नहीं किन्तु मायाचारी है—बड़ा बना हुआ बगुला है। इसका तपश्चरणादिक सब छल मात्र है। याद रखिए, यह आपका घर-बार लूट-लाट कर भाग जायगा। यह सुनकर सेठने कहा—यह जितेन्द्रिय है। इसकी निन्दा न करनी चाहिए। संसारमें जितेन्द्रिय पुरुष बड़े ही दुर्लभ हैं।

ऐसे लोगोंकी निन्दा करनेवाला पापी कहलाता है। यह देख ढोंगी कुन्तल बोला—सेठजी, इस धर्मात्मा पर क्रोध करनेसे कुछ लाभ नहीं। मायावीकी अपने निन्दकके प्रति ऐसी निरीहता देखकर सेठने विचारा—यह ब्रह्मचारी बड़ा ही सत्पुरुष है। अपनी निन्दा करनेवाले पर भी क्रोध नहीं करता और न प्रशंसा करनेवाले पर प्रसन्न ही होता है। सेठके पासमें बैठे हुए लोग भी ऐसा ही कहने लगे कि इन महात्मामें तो अभिमान जरा भी नहीं है। मायावी कुन्तल बोला—जो सर्वज्ञ

होता है वह तो गर्व करता ही नहीं तब हम अल्पज्ञोंकी तो बात ही क्या चली ? अहंकारसे सब गुणोंका नाश हो जाता है। इसलिए गुण चाहनेवालेको अहंकार कभी न करना चाहिए।

इसके बाद सूरदेवने कुन्तलको बड़ी भक्तिसे आहार कराया और उसके रहनेके लिए अपने घरहीमें जहाँ वह घोड़ा बँधा करता था उसके पास ही एक एकान्त स्थानमें जगह देदी। और स्वयं सेठ उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा। कुन्तल भी सेठको प्रतिदिन धर्मोपदेशसे सन्तुष्ट किया करता था। कभी कभी कुन्तल सेठसे कहता—सेठजी, आप बड़े धर्मात्मा हैं, जो जिन भगवान्‌के उपदेश किये गृहस्थोंके षट्‌कर्म—देवपूजा गुरु-सेवा स्वाध्याय, संयम, तप, और दान आदिको निरन्तर करते रहते हैं। और इसीलिए मुनि जन भी आपके यहाँ आहारके लिए आया करते हैं।

एक दिन सूरदेव रातको सो रहा था। उसे गाढ़ निद्राके वश देख कुन्तलने अपनी घात लगाई। घोड़े पर सवार हो वह आकाशमार्गसे चल दिया। घोड़ा और अधिक वेगसे चले, इसके लिए उसने घोड़ेको एक जोरका चाबुक जमाया। घोड़ा उस मारको न सह सका। सो उसने उसे गिरा दिया। कुन्तल मर गया। घोड़ा पहलेके अभ्याससे विजयार्द्ध पर्वत पर सिद्धकूट चैत्यालयमें आगया और चैत्यालयकी तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया। इतनेहीमें सिद्धकूट चैत्यालयकी वन्दना

करनेके लिए अचिन्त्यगति और मनोगति नामके दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज वहाँ आये। इसी समय वहीं आये हुए एक विद्याधरोंके राजाने उस घोड़ेको भगवान्के सामने खड़ा देख अचिन्त्यगति मुनिकी वन्दना कर उनसे उस घोड़ेका हाल पूछा—मुनिराजने अवधिज्ञानसे घोड़ेका सब हाल विद्याधरसे कहकर कहा—राजन्, इस घोड़ेके कारण सूरदेव सेठ पर इस समय बड़ी भारी आपत्ति आई है। इस लिए तुम इसे पुचकार कर और हाथोंसे तीन वार इसकी पीठ ठोककर इस पर चढ़ सेठके पास जल्दी पहुँचो, जिससे उसका उपसर्ग टल जाय।

नीतिकारने लिखा है—नष्ट-भ्रष्ट हुए कुलका, कुएका, तलाव-बावड़ीका, राज्यका, अपनी शरणमें आये हुए लोगोंका, ब्राह्मणका, धर्मात्माओंका और जीर्ण-शीर्ण मन्दिरोंका जो उद्धार करता है—इनकी रक्षा करता है उसे चौगुना पुण्य-बन्ध होता है।

मुनिराजके वचनोंको सुनकर वह विद्याधर-सम्राट् घोड़े पर सवार हो जबतक कौशाम्बीमें पहुँचता है, उसके पहले वहाँ जो घटना हुई, उसका वृत्तान्त लिखा जाता है।

इधर सूरदेवने सोतेसे उठते ही सुना कि घोड़ा चला गया। उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह बोला—मायावियोंके प्रपंचोंको कोई नहीं जान पाता। आज मेरे बड़ा ही अशुभ कर्मका उदय आया। घोड़ेके लिए राजा जरूर ही मेरा सिर

कटवा डालेगा। खैर, अब जो होगा वह भोगना ही पड़ेगा। ऐसा विचार कर उसने अपने सब परिवारके लोगोंको बुलाकर कहा—मेरा तो जो होना होगा वह होगा, परन्तु तुम लोग दान-पूजा आदि धर्मकार्योंको न छोड़ना। क्योंकि नीच लोग तो विघ्नोंके भयसे कोई काम ही प्रारंभ नहीं करते, और मध्यम श्रेणीके पुरुष काम तो प्रारंभ कर देते हैं, पर विघ्न आजाने पर उसे छोड़ बैठते हैं। पर उत्तम पुरुष वे हैं जो बार बार विघ्न आने पर भी प्रारंभ किये हुए कार्यको नहीं छोड़ते। इसलिए हम पर यद्यपि इस समय बड़ी भारी आपत्ति आई है तौ भी तुम लोग अपना धर्मकार्य करते ही चले जाना।

यह सब हाल-चाल देखकर किसीने सेठसे हँसीमें कहा—क्यों सेठजी, आपके ब्रह्मचारी महाराज अच्छे तो थे न? सेठजीने तड़ाकसे उसे मुँहतोड़ जवाब दिया, कि हो क्या गया? माना कि वह मायाचारी था, पर इससे बिगड़ क्या गया?

एक पापीके अपराधसे जिन-शासनकी क्या हानि हो गई? अपने पापसे वही पापी नष्ट हुआ। अयोग्य लोगोंके अपराधसे क्या धर्ममें मलिनता आती है? एक मेंडकके मरजानेसे समुद्र गँदला नहीं होता। और सुनो, यह कलियुग है, इसमें सच्चे पुरुष मिलने बड़े दुर्लभ हो गये, राजकीय करोंके कारण देश दरिद्र हो गये, राजा लोग लोभी हो गये, चोर लूटने लगे, स्त्रियाँ छीजती जाती हैं, सज्जन पुरुष दुःख भोगते हैं और दुर्जन मौज उड़ाते हैं। मतलब यह कि कलियुगका

जमाना है, जो न हो जाय सो थोड़ा है। इसके बाद सेठ चैत्यालयमें गया और भगवान्‌की वन्दना कर प्रार्थना करने लगा—हे दीनबन्धो, अब मैं तभी आहार-पानी ग्रहण करूँगा जब कि मेरा यह उपसर्ग टलेगा। ऐसी प्रतिज्ञा कर सेठ जिनेन्द्र भगवान्‌के सामने संन्यास धारण कर बैठ गया।

इधर राजाने घोड़ेका हाल सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया। वह बोला—सूरदेवका सिर कटवा डालना चाहिए। पासमें बैठे हुए लोगोंने भी राजाकी हाँमें हाँ मिलादी। सो यह ठीक ही है, जैसा राजा वैसी प्रजा होती है। राजाने यमदंडको बुलाकर आज्ञा दी कि मेरे शत्रु सूरदेवका सिर काट कर जल्दी मेरे पास ला। क्योंकि धर्मकार्यके प्रारंभ करनेमें, ऋण चुकानेमें, कन्याका विवाह करनेमें, धन कमानेमें, आग बुझानेमें, रोग दूर करनेमें और शत्रुका वध करनेमें विलंब करना ठीक नहीं।

राजाकी आज्ञा पाकर यमदंड नंगी तलवार लिए चला। सूरदेवका सिर काटनेके लिए उसने तलवार उठाई कि इतनेमें उसे शासनदेवताने वहाँका वहीं कील दिया।

इसी मौके पर वह विद्याधर भी उस घोड़े पर चढ़ा हुआ सूरदेवके पास चैत्यालयमें आ पहुँचा और तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्र भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया। देवोंने सूरदेवके व्रतका प्रभाव देखकर पंचाश्चर्य किये। यह सब वृत्तान्त सुनकर राजाने कहा—सचमुच धनसे बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं। देखिए, धनहीके कारण भरतराज अपने छोटे

भाई बाहुबलिसे लड़े थे। उनके मारनेकी उन्होंने चेष्टा की थी। ऐसा विचार कर सुदंड राजा उसी समय चैत्यालयमें आया और हाथ जोड़कर सेठसे बोला—सेठजी, मैंने अज्ञानतासे बड़ी भूल की है। मुझे क्षमा कीजिए। सूरदेवने राजाको उचित उत्तर देकर संतुष्ट किया।

इसी बीचमें एक आदमीने सेठसे कहा—सेठजी, आपको मृत्यु तो आ पहुँची थी, पर भाग्यसे आप बच गये। सेठने कहा—मैं मर भी जाता तो कोई आश्चर्य न था। क्योंकि मृत्युसे कौन नहीं मरा? देखो, सुवेल नामका पर्वत जिसका अभेद्य किला था, समुद्र जिसकी खाई थी, कुबेर जिसके खजानेकी रक्षा करता था, मुँहमें जिसके संजीवनी विद्या थी, रह रावण भी जब मृत्युसे नहीं बच सका तब साधारण लोगोंकी क्या चली? सेठके इस प्रभावको देखकर सब लोगोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। राजाने कहा—जैनधर्मको छोड़कर दूसरे धर्ममें ऐसा चमत्कार नहीं। यह विचार कर उसने अपने राजकुमारको राज्य दे सुमति मंत्री, सूरदेव, सागरदत्त एवं और बहुतसे लोगोंके साथ जिनदत्त मुनिराजके पास दीक्षा ग्रहण करली। कुछ लोगोंने श्रावकोंके व्रत लिये। कुछ लोगोंके परिणामोंमें इस वृत्तान्तके देखनेसे सरलता आई। इधर विजया रानी, मंत्रिपत्नी गुणश्री, सूरदेवकी स्त्री गुणवती तथा बहुतसी स्त्रियोंने अनन्तश्री आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण की। कुछ स्त्रियोंने श्रावकोंके व्रत लिये।

यह कथा कहकर विद्युल्लता अर्हद्दाससे बोली—नाथ, मैंने यह सब वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा है, इसी कारण मुझे दृढ़ सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुई।

अर्हद्दासने विद्युल्लताकी प्रशंसा कर कहा—प्रिये, मैं भी तुम्हारे सम्यक्त्वका श्रद्धान करता हूँ और उसे चाहता हूँ। अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी उसकी हाँमें हाँ मिलाकर वैसा ही कह विद्युल्लताकी प्रशंसा की। पर कुन्दलताने पहले सरीखी ही दृढ़तासे कहा—यह सब झूठ है, आपने और मेरी इन बहिनोंने जो सम्यक्त्व ग्रहण किया है, मैं उसका श्रद्धान नहीं करती, न मैं उसे चाहती हूँ और न मेरी उसमें रुचि ही है। कुन्दलताकी यह बात सुनकर उदितोदय राजा, सुबुद्धि मंत्री और सुवर्णखुर चोरने अपने अपने मनमें कहा—क्या किया जाय दुर्जनका स्वभाव ही ऐसा होता है।

यह विचार कर वे तीनों अपने अपने घर चले गये।

सवेरा हुआ राजाने शौच, मुख-मार्जन कर सूर्यको अर्घ दिया, नमस्कार किया और प्रातःकालकी सब क्रियाएँ समाप्त कीं। इसके बाद कुछ आदमियोंको साथ लिए राजा और मंत्री अर्हद्दास सेठके घर पर आये। सेठने उनका बड़ा आव-आदर किया। सो ठीक ही है, क्योंकि नीतिकार कहते हैं—जब अपने घर कोई प्रेमी आवे तो उससे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि—आइए, बैठिए, यह आसन है, आपके दर्शनसे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ, कहिए क्या हाल है, बड़े दुबलेसे

दीखते हो, अबकी वार बहुत दिनोंमें दर्शन दिये—इत्यादि। जो ऐसा व्यवहार करें, उनके घर पर प्रसन्न मनसे जरूर जाना चाहिए। और जिसके घर पर वह आवे उसे उचित है कि वह मित्रके आने पर तो क्या, पर यदि शत्रु भी अपने घर पर आ जाय तो उसे वह प्रेमभरी दृष्टिसे देखे, उसके साथ मधुर संभाषण करे, उसे ऊँचे आसन पर बैठावे, भोजन करावे और पान-सुपारी दे।

इसके बाद राजाने सेठसे कहा—सेठजी, रातमें आपने और आपकी सातों स्त्रियोंने जो जो कथाएँ कहीं, दुष्टा कुन्दलताने उन सबको झूठ बतलाकर निन्दा की। वह बड़ी दुष्टा है और कभी यही आपकी मृत्युका कारण होगी। क्योंकि दुष्ट स्त्री, मूर्ख मित्र, जबाब देनेवाला नौकर और साँपका घरमें रहना ये सब मृत्युके कारण हैं। इसलिए उसे मेरे सामने लाइए। मैं उसे दंड दूँगा। यह सुनते ही कुन्दलताने राजाके सामने आ कहा—लीजिए महाराज, यह है वह दुष्टा! इन सबने जो कुछ कहा और इनका जैसा जिन व्रत पर निश्चय है, मैं उसका श्रद्धान नहीं करती, मैं उसे नहीं चाहती और न मेरी उसमें रुचि होती है। राजाने पूछा—तू क्यों उनका श्रद्धान नहीं करती? हम सबने रूपखुर चोरको सूली पर चढ़ते देखा है। इस बातको तू झूठी कैसे बतलाती है?

कुन्दलता बोली—महाराज, ये सब तो जैन-कुलमें ही पैदा हुए हैं और बालकपनसे ही इनको जैनधर्मका संसर्ग रहा है, इसलिए ये यदि जैनधर्मको छोड़कर दूसरे धर्मको नहीं

जानते तो इसमें कोई नई बात नहीं। पर मैं न तो जैनीकी लड़की हूँ, और न स्वयं जैनी हूँ, तौ भी मुझे जिनधर्मके व्रतोंका प्रभाव सुनकर वैराग्य हो गया, यह सचमुच आश्चर्यकी बात है महाराज! मैं केवल श्रद्धान मात्रसे कुछ लाभ नहीं समझती और यही कारण है कि अब मैंने निश्चय कर लिया है—मैं सवेरे ही जिन-दीक्षा लूँगी। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि इन सबने जिनधर्मके व्रतोंका माहात्म्य देखा है और सुना भी है, तौ भी ये सब रहे मूर्खके मूर्ख ही। उपवास आदि करके ये शरीरको सुखाते जरूर हैं, पर संसारके भोगोंमें ये सदा फँसे रहते हैं—भोग-विलासोंको छोड़ते नहीं हैं। मेरा तो यह सिद्धान्त है कि मनुष्यको गुण सम्पादन करनेमें प्रयत्न करना चाहिए, आडम्बरोंमें नहीं। जिन गायोंमें दूध ही नहीं है उनके गलेमें केवल घंटा बाँध देनेसे क्या वे बिक जायँगी? इस प्रकार कुन्दलताकी बातें सुनकर राजाको, मंत्रीको और अर्हद्दास आदिको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने तब उसकी प्रशंसा की, स्तुति की और उसे नमस्कार किया। इसके बाद उदितोदय राजा, सुबुद्धि मंत्री, सुवर्णखुर चोर, अर्हद्दास सेठ तथा और भी बहुतसे लोगोंने अपना अपना पद और अपना अपना स्थावर-जंगम सम्पत्तिका अधिकार अपने अपने पुत्रोंको सौंपकर गणधर मुनिराजके पास जिन-दीक्षा ग्रहण की। किसीने श्रावकोंके व्रत लिये। किसी किसीने अपने परिणामोंको ही निर्मल किया। रानी यशोमती, मंत्रि-पत्नी

सुप्रभा, अर्हद्दासकी आठों स्त्रियोंने तथा और भी बहुतसी स्त्रियोंने उदयश्री आर्यिकाके पास जिन-दीक्षा ली। किसीने श्रावकोंके व्रत लिये। सबने बड़ा उग्र तप किया। कोई मोक्ष गया, कोई सर्वार्थसिद्धि गया, तथा कोई किसी स्वर्गमें गया और कोई किसीमें।

इस प्रकार गौतमस्वामीने श्रेणिकसे सम्यक्त्व-कौमुदीकी कथाएँ कहीं। उन्हें सुनकर सबको दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। ग्रन्थकार कहते हैं—तब भव्यजनो, तुम भी इन कथाओंको सुनकर या पढ़कर सम्यक्त्व ग्रहण करो न? जिससे तुम्हारा संसार-भ्रमण छूट सके और तुम मोक्षका सुख प्राप्त कर सको।

देखो, यह जीव धर्म-साधनसे स्वर्ग लाभ करता है और पापसे नर्कोंमें जाता है। ज्ञानसे इसे मोक्ष मिलती है और अज्ञानसे कर्मोंका बन्ध होता है। इसलिए जो किसी भी प्रकारका सुख चाहते हैं, जैसे—धन-दौलतका, कामभोगका, सौभाग्य प्राप्तिका, पुत्र-लाभका, राज्य-वैभवका या और किसी प्रकारका, तो उन्हें धर्म प्राप्तिके लिए पूर्णपने यत्न करना चाहिए। क्योंकि धर्मसे जब स्वर्ग-मोक्षका भी सुख मिल सकता है तब उससे और साधारण सुख क्या न मिलेंगे? मिलेंगे—और अवश्य मिलेंगे। धर्मका लक्षण ही ऐसा है कि "जो दुःखोंसे छुड़ाकर सुखमें स्थापित करे।" वह पवित्र धर्म संसारके जीवोंका कल्याण करे, यह मनोकामना है।

समाप्त।

कोलाहलको सुनकर पद्मश्रीने वहाँ आकर उन साधुओंसे कहा—भला, आप लोग तो ज्ञानी हैं, त्रिकाल-ज्ञाता हैं तब अपने ज्ञान द्वारा क्यों नहीं पता लगा लेते? साधुओंने कहा—अरी हम ऐसे ज्ञानी नहीं हैं। पद्मश्रीने तब फिर कहा—आप लोग तो गजब करते हैं! अरे, जब अपने पेटमें रखे हुए जूतोंको ही आप नहीं जान सकते, तब आपने यह कैसे जान लिया कि मेरे पिता मरकर वनमें मृग हुए हैं? साधुओंने कहा—तो क्या वे जूते हम लोगोंके पेटमें हैं? पद्मश्री बोली—बेशक, इसमें भी कोई संदेह है? तब पद्मश्रीने सबको कै कराकर उन जूतोंके छोटे छोटे टुकड़ोंको दिखा दिया। यह देखकर त्रिकालज्ञानी साधु बड़े शर्मिन्दा हुए। उन्होंने गुस्सा होकर बुद्धदाससे कहा—पापी बुद्धदास, तेरे उपदेशसे ही तेरी बहू पद्मश्रीने न करने योग्य काम भी कर डाला। अपने गुरुओंका ऐसा अपमान देखकर बुद्धदासने सब गहना, कपड़ा-लत्ता और धन-माल छीन-कर लड़के और बहूको घरसे निकाल दिया। इस समय बुद्धसिंहसे पद्मश्रीने कहा—नाथ, चलिए मेरी मांके पास किसी तरहकी कमी नहीं है। यह सुन बुद्धसिंह बोला—प्रिये, भिक्षा माँग खाऊँगा, पर ऐसी दशामें किसी सम्बन्धीके यहाँ न जाऊँगा। नीतिकारने कहा है—सिंह और व्याघ्रोंसे भरे हुए वनमें रहना, पेड़ोंके फलपत्ते खाकर गुजारा करना, घासकी शय्या पर सोना और वृक्षोंकी छाल पहर-ओढ़कर जंगलहीमें रहना तो कहीं अच्छा है, पर

बन्धुओंके बीच धनहीन होकर रहना अच्छा नहीं। ऐसा विचार कर पद्मश्रीको साथ ले बुद्धसिंह परदेशको चल दिया। शहर बाहर होते ही इन्हें दो व्यापारी मिले। वे दोनों पद्म-श्रीका रूप देखकर उस पर लुभा गये। दोनोंने उसके ले उ-ड़नेकी ठानी। पर साथ ही उन्होंने मनमें विचारा कि हम दोनोंको तो यह किसी तरह मिल नहीं सकती। इसलिए एकको मार डालना अच्छा है। दूसरेने भी ऐसा ही विचारा। निदान दोनोंने विष मिलाकर भोजन बनाया और एकने एकको खिलाया। वे दोनों उस विष मिले भोजनको खाकर अचेत हो गये। उन दोनोंका थोड़ासा भोजन बच गया था। उसे पद्मश्रीके मना करने पर भी बुद्धसिंहने खालिया। वह भी उसी समय अचेत हो गया। पद्मश्री अपने पतिकी यह दशा देखकर बड़ी व्याकुल हुई। रो-रोकर बड़ी मुश्किलसे उसने सारी रात विताई। सवेरे ही किसीने जाकर बुद्धदाससे कह दिया कि तुम्हारा लड़का बुद्धसिंह शहरके बाहर मरा पड़ा है। यह सुनकर बुद्धदासको बड़ा दुःख हुआ। उसी समय दौड़ा हुआ वह लड़केके पास आया। और उसकी वह दशा देखकर पद्मश्रीसे उसने कहा—अरी डाकिन, तूने ही मेरे लड़केको और इन बेचारे दोनों व्यापारियोंको खाया है! मुझे नहीं मालूम था कि तू ऐसी पिशाचिनी होगी, नहीं तो क्यों मैं इसे तेरे साथ आने देता। अब तेरी भी कुशल इसीमें है कि या तो तू मेरे लड़केको जिलादे, नहीं तो तुझे भी

मैं मार डालूँगा। ऐसा कहकर अचेत पड़े बुद्धसिंहको उसके पास रखकर वह लगा रोने। पद्मश्रीने मनमें विचारा—मेरे जो कर्मोंका उदय है, उसे कौन मेट सकता है? अस्तु, जो हो, उसने हाथ जोड़कर कहा—यदि मेरे हृदयमें जिनधर्मका पक्का श्रद्धान है, यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ, यदि मुझे रात्रिभोजनका त्याग है, तो हे—शासनदेवता, मेरे प्राणनाथ और ये दोनों व्यापारी सचेत हो जायँ! आश्चर्य है कि—इतना कहते ही पद्मश्रीके व्रतके प्रभावसे वे तीनों उठ बैठे। यह देखकर शहरके लोगोंने पद्मश्रीकी प्रशंसा कर कहा—इसे धन्य है, जो ऐसी सुन्दर होने पर भी यह पतिव्रता है। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। नीतिकारोंने कहा है कि राजनीतिमें निपुण राजा यदि धार्मिक हो तो उसमें आश्चर्य नहीं, वेद और शास्त्रोंको पढ़ा हुआ ब्राह्मण यदि पंडित हो, तो भी कुछ आश्चर्य नहीं; पर हाँ रूपवती और यौवनवती स्त्री यदि पतिव्रता हो, तो आश्चर्य है तथा निर्धन मनुष्य यदि पाप न करे तो आश्चर्य है। इस तरह प्रशंसा कर नगरके लोगोंने पद्मश्रीकी पूजा की। देवोंने पंचाश्चर्य किये। यह सब वृत्तान्त धाड़िवाहनने भी देखा। उसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह कहने लगा—जिनधर्मको छोड़कर और किसी धर्मसे इष्टसिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए इसी धर्मको स्वीकार करना चाहिए। ऐसा विचार कर अपने नयविक्रम नामके पुत्रको राज्य देकर उसने यशोधर मुनिके पास जिन-

दीक्षा लेली। उसके साथ और भी बहुतसे लोगोंने दीक्षा ली। बौद्धधर्मावलम्बी बुद्धदास और बुद्धसिंहने जैनी हो श्रावकोंके व्रत लिये। और कई लोगोंने अपने परिणामोंको ही सुधारा। इधर पद्मावती रानी, वृषभदास सेठकी स्त्री पद्मावती, तथा पद्मश्री आदिने सरस्वती आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण की।

यह कथा सुनाकर पद्मलताने अर्हद्दाससे कहा—प्राणनाथ, यह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मुझको दृढ़तर सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है। यह सुनकर अर्हद्दासने कहा—प्रिये, जो तुमने देखा है, मैं उसका श्रद्धान करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उस पर रुचि-प्रेम करता हूँ। अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। परन्तु कुन्दलताने सबकी हाँमें हाँ न मिलाकर कहा—यह सब झूठ है, मैं इसका श्रद्धान नहीं करती।

राजा, मंत्री और चोरने अपने अपने मनमें विचारा—पद्मलताकी प्रत्यक्ष देखी हुई बातको भी कुन्दलता झूठ बतलाती है। वास्तवमें यह बड़ी पापिनी है। राजाने कहा—सवेरे ही मैं इसे गधे पर चढ़ाकर शहरसे बाहर निकाल दूँगा। चोरने कहा—दुष्टोंका ऐसा स्वभाव ही होता है।

७–कनकलताकी कथा।

प झलताकी कथा सुनकर अर्हद्दासने कनकलतासे कहा—प्रिये, तुम भी अपने सम्यक्त्वके प्राप्तिका कारण बतलाओ। कनकलता तब यों कहने लगी—

अवंति देशमें उज्जयिनी नगरी है। उसमें नरपाल नामका राजा था। उसकी रानी मदनवेगा थी। राजमंत्रीका नाम मदनदेव था। मंत्रीकी स्त्रीका नाम सोमा था। इसी नगरीमें समुद्रदत्त नामका एक सेठ रहता था। सेठकी स्त्रीका नाम सागरदत्ता था। इसके एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रका नाम उमय और पुत्रीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता कौशाम्बीके रहनेवाले जिनदत्त श्रावकको व्याही गई थी। उमय बड़ा व्यसनी था। माता-पिताने उसे बहुतेरा मना किया, पर उसने व्यसनोंको न छोड़ा। उन्होंने दुखी होकर सोचा—सच है पूर्व जन्ममें उपार्जन किये कर्मोंको कोई नहीं मेट सकता।

उमय हर रोज शहरमें चोरी किया करता था। एक दिन गस्त लगानेवाले सिपाहीने उसे चोरी करते पकड़ लिया। वह उमयको मारता, पर समुद्रदत्तके कहनेसे उसने उसे छोड़ दिया। इसी तरह सिपाहीने कई वार चोरी करते उसे पकड़ा

और छोड़ दिया। उमयकी यह दशा देखकर सिपाहीने सोचा—एक पेटसे पैदा हुए सब एकसे नहीं होते। जिनदत्ता और उमय दोनों एक पेटके बहिन-भाई हैं। पर बेचारी जिनदत्ता कितनी सीधी-साधी और यह ऐसा पापी है।

उमयने वार वार मना करने पर भी जब न माना तो सिपाही एक दिन लाचार हो उसे राजाके पास लेगया। राजासे उसने कहा—महाराज यह नगरसेठ समुद्रदत्तका लड़का है। उमय इसका नाम है। यह बड़ा चोर है। इसे हजारों वार मना करने पर भी इसने चोरी करना न छोड़ा। अब जैसा आप उचित समझें करें। राजाने कहा—जब इसमें समुद्रदत्तका एक भी गुण नहीं तब यह उसका लड़का कैसे कहा जा सकता है। राजाने समुद्रदत्तको बुलाकर कहा—सेठ महाशय, इस दुष्टको घरसे निकाल बाहर कीजिए। अन्यथा इसके साथ आप भी नाहक खराब होंगे। आपकी मान-मर्यादामें बट्टा लगेगा। दुर्जनके संसर्गसे सज्जनोंको भी दोप लग जाया करता है। सीताका हरण रावणने किया था, परन्तु बाँधा गया था समुद्र। इसलिए कि वह लंकाके पास ही था।

समुद्रदत्तने विचारा—साधुओंको दुर्जनोंकी संगति कष्टके लिए ही होती है। पानीकी घड़ीका वर्तन तो पानीमें डूबकर समय बतलाता है, पर ठोका जाता है पासमें लगा हुआ घंटा।

इसके बाद उसने अपनी स्त्रीसे कहा—अब उमयको घरसे निकाल देना ही अच्छा है। क्योंकि चोरसे

घूस लेना, उससे प्रीति रखना, चोरीका माल खरीदना, अथवा चोरीके मालमेंसे हिस्सा लेना इन बातोंको समझदार लोग बहुत जल्दी समझ लेते हैं—ऐसी बातोंका पता उन्हें शीघ्र लग जाता है। जब उमय घरमें रहेगा तो उससे हर तरहका सम्बन्ध रहेगा और उससे बड़े भारी अनर्थके होनेकी संभावना है। इसीलिए नीतिकारोंने कहा है कि कुलकी रक्षाके लिए कुलके उस आदमीको ही त्याग देना अच्छा है जिससे कुलमें कलंक लगता हो। अगर हम उमयको न निकालेंगे तो शहरके सब लोगोंसे विरोध होगा और बहुतोंके साथ विरोध अच्छा नहीं। क्योंकि चीटियाँ बड़े भारी सर्पको भी खा डालती हैं। ऐसा विचार कर समुद्रदत्तने उमयको घरसे निकाल दिया। उमयकी माको उसके निकाले जानेसे बड़ा दुःख हुआ। वह विचारने लगी—जिसका भाग्य अच्छा होता है उसे समुद्रके उस पारसे भी वस्तु प्राप्त हो जाती है और जिसका भाग्य बुरा है उसकी हथेली पर रखी हुई वस्तु भी चली जाती है।

उमय घरसे निकल कर एक व्यापारीके साथ कौशाम्बीमें अपनी बहिन जिनदत्ताके पास गया। लेकिन उमयकी बदनामी सब जगह फैल चुकी थी। इसलिए उसकी बहिनने भी उसे अपने घरमें न घुसने दिया। उत्तम विद्या, अनोखी बात, बदनामी, कस्तूरीकी गंध, आदि बातें पानीमें डाली हुई तेलकी बूँदकी तरह सब जगह फैल जाती हैं।

उमयने विचारा—मैं बड़ा अभागा हूँ जो यहाँ पर भी आफ़तने मेरा पिंड न छोड़ा। नीतिकारने ठीक कहा है, कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जाता है आफ़तें भी वहीं पहुँच जाती हैं। बेचारे एक गंजे सिरके आदमीको बड़ी तेज़ धूप लग रही थी। वह बेलके पेड़ तले जा खड़ा हुआ। उसने विचारा—यहाँ मुझे धूप न लगेगी; लेकिन ऊपरसे एक बड़ा बेल गिरा और गंजेकी खोपड़ी फूट गई।

एक मल्लाहने एक मछलीको पकड़ा तो बड़े जोरसे, पर मछली उसके हाथोंसे निकल गई, निकल कर वह जालमें गिरी। जालसे भी किसी तरह वह निकल गई, पर निकलते ही उसे झटसे बगुला निगल गया। मतलब यह कि जब भाग्य ही उल्टा होता है तब मनुष्य आपत्तिसे बच नहीं सकता। इससे उमयको बड़ा वैराग्य हुआ। वह विचारने लगा—पराधीन रहना भी बड़ा कष्टदायक है। देखो, सम्पूर्ण तारामंडल जिसका परिवार है, जो औषधियोंका मालिक है, जिसका शरीर अमृतमय है और जो स्वयं प्रकाशमान है। ऐसा चन्द्रमा भी सूर्यका उदय होनेपर फीका पड़ जाता है; सच है दूसरेके घर जानेसे सबको नीचा देखना पड़ता है। ऐसा विचार कर वह जिन मंदिरमें पहुँचा। वहाँ उसने श्रुतसागर मुनिसे धर्मका उपदेश सुनकर सप्त व्यसनके त्याग पूर्वक दर्शन-प्रतिमा धारण कर श्रावकोंके व्रत लिये। उमय अब सच्चा श्रावक हो गया। इसके सिवा उसने अजान फलोंके

खानेका भी त्याग किया। ग्रन्थकार कहते हैं—गुणवानके संसर्गसे गुणहीन भी गुणी हो जाता है। थोड़ीसी सुगंध सारे घरको सुगन्धित कर देती है।

उमयकी बहिनने जब सुना कि उमयने व्यसनोंको छोड़ दिया–अब वह सदाचारी हो गया, तब वह बड़े आदरसे उसे अपने घर पर लाई और बहुतसा धन भी उसने उसे दिया। यह ठीक ही है, क्योंकि सुमार्ग पर चलनेवालेकी पशु भी सहायता करते हैं, और कुमार्गीको सगा भाई भी छोड़ देता है। सच्चरित्र मनुष्यों पर आई हुई विपत्ति बहुत दिनोंतक नहीं ठहरती। क्योंकि हाथोंके आघातसे गिरा गेंद फिर भी उठता ही है।

एक दिन उज्जैनके कुछ व्यापारी कौशाम्बीमें आये। उन्होंने उमयको सदाचारी देखकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—भाई, तू धन्य है। अच्छा हुआ जो तुझे ऐसी उत्तम संगति मिल गई, जिससे तू ऐसा योग्य बन गया। क्योंकि उत्तम, मध्यम और जघन्य गुणोंकी प्राप्ति उत्तम, मध्यम और जघन्य मनुष्योंकी संगतिसे ही हुआ करती है। देख, गरम लोहे पर पानी पड़नेसे उसका नाम निशान भी नहीं रहता, पर कमलके पत्ते पर पड़ा हुआ वही पानी मोती जैसा दिखाई देने लगता है और वही पानी यदि स्वाति नक्षत्रमें समुद्रकी सीपमें पड़ जाय तो मोती ही बन जाता है। उमय, तुम्हें धर्मात्मा देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता होती है।

तुमने बहुत अच्छा काम किया जो व्यसनोंको छोड़कर धर्मको स्वीकार किया। क्योंकि जैसे चन्द्रमाके विना रात्रि की, और कमलोंके विना सरोवरकी शोभा नहीं उसी तरह धर्मके विना जीवनकी भी शोभा नहीं।

उभय भी तब बेचनेके लिए बहुतसा सामान खरीद कर अपने कुछ मित्रोंको साथ लिए उन व्यापारियोंके साथ अपनी जन्मभूमि उज्जयिनीकी ओर चला। उभय अपने माता-पिताको देखनेके लिए बड़ा उत्सुक हो रहा था। इसलिए वह उन व्यापारियोंका साथ छोड़कर अपने मित्रोंको लिए आगे बढ़ा। चलते चलते रात हो गई। उभयको रास्ता मालूम न होनेसे वह एक भयानक जंगलमें जा पहुँचा। उन सबने रात वहीं बिताई। सवेरा हुआ। उभयके मित्रोंको भूख लगी। उन्हें कहींसे देखनेमें अच्छे, रसीले, पर मरणके कारण ऐसे कुछ किंपाक-फल (विष-फल) मिल गये। उन फलोंको उन्होंने खालिया। उभयको भी वे फल दिये गये। उभयने पूछा—इन फलोंका नाम क्या है ? उसके मित्रोंने कहा—तुम्हें नामसे क्या मतलब ? जो फल कड़वे हों, नीरस हों, और वेस्वाद हों उन्हें न खाना चाहिए इनके सिवाय और फलोंको खाकर अपनी भूख मिटा लेनी चाहिए। उभयने कहा ठीक है, पर मैं विना नाम जाने किसी फलको नहीं खा सकता। मेरा ऐसा नियम है। यह कहकर उभयने उन फलोंको नहीं खाया। फल खानेके थोड़ी ही देर बाद उभयके मित्र

अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े। यह देखकर उमयको बड़ा खेद हुआ। वह सोचने लगा—हाय! कौन जानता था कि ये फल हलाहल विष भरे होंगे। उमय तो इसी विचारमें डूब रहा था कि इधर उसके नियमकी परीक्षा करनेके लिए वनदेवता एक सुन्दर स्त्रीका रूप लेकर आई और उमयको एक फलोंसे लदा वृक्ष दिखाकर उसने कहा—पथिक, तूने इस कल्पवृक्षके फलोंको क्यों नहीं खाया? तेरे मित्रोंने जो फल खाये हैं वे तो विषफल थे, पर यह कल्पवृक्ष है। इसके फल पुण्य विना नहीं मिलते। इसके फलोंको जो एक वार खा लेता है, उसके सब रोग दूर हो जाते हैं। वह फिर अमर हो जाता है—उसे कभी कोई दुःख नहीं होता। और उसका ज्ञान इतना बढ़ जाता है कि वह सब चराचर वस्तुओंको जानने लग जाता है। मैं पहले बहुत ही बूढ़ी थी। सो इन्द्र दया करके इस वृक्षके फल खानेको मुझे यहाँ रख गया। देख, मैं इन्हीं फलोंको खाकर ऐसी जवान हो गई हूँ। यह सब सुनकर उमयने कहा—बहिन, विना जाने फलोंको खानेकी मुझे प्रतिज्ञा है। इस-लिए मैं तो इन फलोंको हर्गिज नहीं खा सकता। नाहक तुम इनकी इतनी तारीफ करती हो। जो ललाटमें लिखा होगा, वही तो होगा। फिर व्यर्थ अधिक बोलनेसे लाभ क्या? उमयकी धीरताको, उसके नियमकी निश्चलता देखकर वनदेवताने उससे कहा—उमय, तेरी [illegible]

निश्चलताको देखकर मैं तुझ पर प्रसन्न हुई । तुझे जो इच्छा हो वैसा वर माँग । उभयने तब वनदेवतासे कहा—यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो मेरे इन अचेत पड़े साथियोंका विष दूरकर इन्हें सचेत कर दो और उज्जयिनीका रास्ता बतादो । 'तथास्तु' कह कर वनदेवताने उन्हें सचेत कर दिया । नीतिकार कहते हैं—उद्योग, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये छह बातें जिसके पास हैं, उसकी देव भी सहायता करते हैं !

वे सब सचेत होकर उभयसे कहने लगे—भाई उभय, तुम्हारे प्रसादसे हम लोग आज जी गये । तुम्हारे व्रतका माहात्म्य हमने आँखों देख लिया । सच तो यह है कि तुम्हें कुछ भी असाध्य नहीं है ।

वनदेवताने उन्हें उज्जैनका मार्ग भी बता दिया। कुछ दिनों बाद मित्रोंको साथ लिए उभय अपने घर आ पहुँचा। उसे सदाचारी देखकर उसके माता-पिता, राजा, मंत्री परिवार तथा नगरके लोगोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—भाई उभय, तू धन्य है, उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे तू भी पूज्य हो गया । नीतिकारोंने ठीक कहा है कि उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे बुरा मनुष्य भी गौरवको प्राप्त कर लेता है । यही कारण है कि फूलोंके साथमें गुँथा हुआ धागा बड़े बड़े पुरुषोंके मस्तक पर पहुँच जाता है । दूसरे दिन नगरदेवताने आकर एक बहुत सुन्दर रत्नमयी मंडप बनाया और उसमें उभयको बैठाकर

उसका अभिषेक किया, पूजा की और पंचाश्चर्य किये यह सब वृत्तान्त नगरके लोगोंने तथा राजाने देखकर कहा— जिनधर्म ही सब आपत्तियोंको दूर कर सकता है, दूसरा धर्म नहीं। जैसा कि कहा है—इस लोक और परलोकमें धर्म ही जीवोंका हित करनेवाला है, अन्धकारके नष्ट करनेको सूर्य है, सब आपत्तियोंको दूर करनेमें समर्थ है, परमनिधि है, अनाथ-असहायोंका बन्धु है, विपत्तिमें सच्चा मित्र है और संसाररूपी विशाल मरुभूमिमें कल्पवृक्ष समान है। धर्मसे बढ़कर संसारमें और कोई वस्तु नहीं है। ऐसा विचार कर नरपाल नृपतिने अपने पुत्रको राज्यपद और मंत्रीने अपने पुत्रको मंत्रीपद देकर दोनोंने सहस्रकीर्त्ति मुनिके पास जिन-दीक्षा ग्रहण करली। इनके साथ साथ राजसेठ समुद्रदत्त, उभय तथा और बहुतसे लोगोंने भी दीक्षा ग्रहण की। कुछ लोगोंने श्रावकोंके व्रत लिये और कुछने अपने परिणामोंको ही सरल बनाया। इनके बाद ही मदनवेगा रानी, मन्त्रि-पत्नी सोमा, समुद्रदत्तकी स्त्री सागरदत्ता तथा और बहुतसी स्त्रियोंने भी अनन्तमती आर्यिकाके पास जिन-दीक्षा ग्रहण की और कितनी ही स्त्रियोंने श्रावकोंके व्रत लिये।

इस कथाको कहकर कनकलताने अर्हद्दाससे कहा— प्राणनाथ, यह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मुझे दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—प्रिये, जो तुमने देखा है, उसका मैं श्रद्धान करता हूँ उसे चाहता हूँ

और उसमें रुचि करता हूँ। अर्हद्दासकी और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर कुन्दलताने पहलेकी तरह ही दृढ़तासे कहा—यह सब झूठ है। मैं इस पर श्रद्धान नहीं करती। राजा, मंत्री और चोर मनमें विचारने लगे—कनकलताकी प्रत्यक्ष देखी हुई बातको भी यह झूठी बतला रही है, यह बड़ी पापिनी है। राजाने कहा—मैं सबेरे ही इसे गधे पर चढ़ाकर शहरसे निकाल दूँगा। चोरने सोचा—जो किसीको झूठा ही दोष लगाता है, वह नीच गतिका पात्र होता है। मनुष्यको दूसरोंके विद्यमान गुणोंको छुपाना तथा अविद्यमान दोषोंको कहना उचित नहीं। जो ऐसा करते हैं उनका जन्म नीच गोत्रमें होता है।

८—विद्युल्लताकी कथा।

नकलताकी कथा सुनकर अर्हद्दासने विद्युल्लतासे कहा—प्रिये, अब तुम भी अपने सम्यक्त्वका कारण सुनाओ।

विद्युल्लताने तब यों सुनाना आरंभ किया—भरतक्षेत्रमें कौशाम्बी नगरी है। उसका राजा सुदंड था। विजया इसकी रानी थी। मंत्रीका नाम सुमति था। गुणश्री मंत्रीकी स्त्री थी। सूरदेव राजसेठ था गुणवती उसकी स्त्री थी। एक बार सूरदेव

व्यापारके लिये मङ्गलदेशमें गया और वहाँसे वह एक सुन्दर घोड़ी खरीद कर लाया। उसने उस घोड़ीको राजाकी भेट किया। राजाने प्रसन्न होकर सेठको बहुत धन दिया, उसका सम्मान किया और उसकी बहुत प्रशंसा की।

एक समय सूरदेवने गुणसेन मुनिको विधिपूर्वक दान दिया। दानके फलसे देवोंने सूरदेवके घर पंचाश्चर्य किये।

इसी कौशाम्बीमें सागरदत्त नामका एक और सेठ रहता था। पर यह निर्धन था। इसकी सब संपत्ति नष्ट हो गई थी। इसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था और पुत्रका समुद्रदत्त। समुद्रदत्त सूरदेवके दानके फलसे जो पंचाश्चर्य हुए उन्हें देखकर मनमें विचारने लगा—मैं गरीब हूँ तब मुनियोंको दान कैसे दे सकता हूँ। अस्तु, मैं भी कभी सूरदेवकी तरह धन कमाकर दान दूँगा। सच है—धनके बिना कुछ नहीं हो सकता। जिसके पास धन है उसके सभी मित्र हैं, सभी बन्धु हैं, वही मनुष्य है, और पंडित भी वही है। इस संसारमें पराये आदमी भी धनवानोंके स्वजन हो जाते हैं, और गरीबोंके स्वजन भी पराये हो जाते हैं। ऐसा विचार कर कुछ मित्रोंको साथ लिए वह मंगल देशको चला। रास्तेमें मित्रोंने उससे पूछा—भाई, जान पड़ता है तुम तो दूर देशकी यात्राके लिए चल रहे हो। तुमने हमसे चलते समय तो यह हाल नहीं कहा। अच्छा, तब यह तो बतलाओ कि इतने दूर देश चलते किस लिए हो ? समुद्रदत्त

बोला—समर्थोंको भी क्या कोई बोझा लगता है ? व्यापारियोंके लिए क्या कोई देश दूर है ? विद्वानोंके लिए क्या कोई विदेश है ? और मीठे बोलनेवालोंका क्या कोई शत्रु होता है ? कौआ, कायर पुरुष, और मृग, परदेश जानेसे डरते हैं—आलस और प्रमादसे वे अपने ही स्थानमें पड़े पड़े मर जाते हैं। इस तरह बात करते करते वे लोग पलाश नामके गाँवमें जा पहुँचे। वहाँ समुद्रदत्तने उनसे कहा—भाइयो, अब हमें यहाँसे साथ छोड़ देना पड़ेगा। इसलिए जहाँ कहीं हमारा माल बिक सके उन शहरों और गाँवोंमें माल बेच कर और खरीदने लायक माल खरीद कर तीन वर्ष बाद फिर हमें इसी स्थान पर आकर मिल जाना चाहिए।

ऐसी सलाह करके समुद्रदत्तके साथी वहाँसे चले गये। समुद्रदत्त रास्तेका हारा-थका था; इसलिए वह उसी गाँवमें रह गया। समुद्रदत्त जब अपने साथियोंसे बिछुड़ा तो उसे यह प्रवास अब बड़ा ही कष्टकर जान पड़ने लगा। नीतिकारने कहा है—पहले तो मूर्ख रहना तथा युवा अवस्थामें दरिद्रताका होना ही दुःख है, परन्तु दूसरेके घर रहना और परदेशमें जाना तो उससे भी अधिक दुःखदायक है।

इस गाँवमें एक अशोक नामका गृहस्थ रहता था। वह घोड़ोंका व्यापार करता था। इसकी स्त्रीका नाम वीतशोका था। इसके एक लड़की थी। उसका नाम कमलश्री था।

अशोक अपने घोड़ोंकी रखवालीके लिए एक नौकरकी खोजमें था। यह बात समुद्रदत्तको मालूम हुई। उसने अशोकके पास आकर कहा—मैं तुम्हारे घोड़ोंकी रखवाली किया करूँगा। कहिए आप मुझे क्या नौकरी देंगे? नीतिकार कहते हैं—मनुष्यके पास जबतक धन रहता है तभीतक उसमें गुण और गौरव रहता है। और जहाँ वह याचक बना कि उसके गुण और गौरव सभी नष्ट हो जाते हैं। यही दशा समुद्रदत्तकी हुई। एक सेठका लड़का आज घोड़ोंकी सईसी करने पर उतारू हुआ। अस्तु।

समुद्रदत्तकी बात सुनकर अशोकने उससे कहा—दिनमें दो बार भोजन और छह महीनेमें एक साफा, एक कम्बल और एक जूता जोड़ा तथा तीन वर्षमें इन घोड़ोंमेंसे तुम्हारे मनचाहे दो घोड़े, यह नौकरी तुम्हें मिलेगी। बोलो, मंजूर है? समुद्रदत्तने अशोककी यह नौकरी स्वीकार करली। अब वह घोड़ोंकी बड़ी सम्हालसे रखवाली करने लगा। नीतिकार कहते हैं—नौकर आदमी तरक्कीके लिए स्वामीकी अधिक सेवा-शुश्रूषा करता है और मौके पर अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करता। सुखकी आशासे दुःख तक उठाता है। सचमुच नौकरसे बढ़कर कोई मूर्ख नहीं है।

समुद्रदत्त अशोककी लड़की कमलश्रीको प्रतिदिन अनेक प्रकारके मीठे मीठे फल-फूल और कंद ला-लाकर दिया करता था, और उसे अपना मनोहर गाना सुनाया करता था।

निदान कुछ समयमें समुद्रदत्तने कमलश्रीको अपने वशमें कर लिया। वह भी उसे हर तरहसे चाहने लगी। नीतिकार कहते हैं—जब वनमें भील लोग गा-गाकर बड़े तेज भागनेवाले हरिणों तकको वशमें कर लेते हैं तब मनुष्य मनुष्यको अपनी गान-कलासे वशमें करले तो आश्चर्य क्या ? सच है गुणों द्वारा कौन कार्यसिद्ध नहीं होता ? बालिकाएँ खेलके समय अच्छे अच्छे फलादिक खानेको देनेसे, जवान स्त्रियाँ अच्छे गहने और कपड़ोंसे, मध्यवया स्त्री (मध्यमा नायिका) सुदृढ़ संभोग कलासे और वृद्ध स्त्रियाँ गौरवके साथ उनसे मीठी मीठी बातें करनेसे वशमें होती हैं। यही कारण था कि कमलश्री गाने और फलादिकके देनेसे समुद्रदत्तके वश हो गई। कमलश्रीके मनमें अब यही भावना उठने लगी कि मेरा पति यही हो। नीतिकारने ठीक कहा है—कि आगको ईंधनसे संतोष नहीं होता, नदियोंसे समुद्रकी तृप्ति नहीं होती, प्राणियोंको खाते खाते यमराज नहीं अघाता और स्त्रियोंको चाहे जितने पुरुष मिलते जायँ पर उन्हें चैन नहीं पड़ती—हर समय वे दूसरोंके लिए ही तड़फती रहती हैं।

समुद्रदत्तको रहते पूरे तीन वर्ष हो गये। एक दिन वह कमलश्रीसे बोला—प्यारी, तुम्हारी कृपासे मेरे दिन बड़े सुखसे बीते। अब मेरी नौकरीके दिन पूरे हो गये, सो मैं अपने देश जाऊँगा। मैंने जो तुमसे कभी बुरा-भला कहा हो—मेरी जबानसे भूलमें कुछ बेजा निकल गया हो, तो तुम मुझे क्षमा करना।

यह सुनते ही कमलश्रीके मुँह पर एक साथ उदासी छागई। वह गिड़गिड़ा कर बोली—प्राणनाथ, मैं आपके विना नहीं जी सकती ? इसलिए मैं तो आपहीके साथ चलूँगी। समुद्रदत्तने तब उससे कहा—प्यारी, तुम धनवान्की लड़की हो, सुकुमार हो, और मैं एक गरीब रास्तागिर हूँ। मेरे साथ रहकर तुम्हें क्या सुख होगा ? घर छोड़कर बाहर तुम्हें सुख न मिलेगा कमलश्री ! इसलिए मेरे साथ तुम्हारा जाना ठीक नहीं है। देखो, निर्धनोंको प्रायः कष्ट उठाने पड़ते हैं और उनकी ऐसी दशा देख स्त्रियाँ भी उन्हें छोड़कर नौ-दो-ग्यारह हो जाती हैं। कमलश्रीने कहा—मैं अधिक क्या कहूँ, पर यह याद रखिए कि मैं आपके विना क्षण भर भी नहीं जी सकती। बहुत मना करने पर भी जब कमलश्रीने न माना, तब समुद्रदत्तने उससे कहा—अच्छा तब चलो। जो तुम्हारे भाग्यमें होगा, वह होगा। क्योंकि जो होनहार होती है वह नारियलके फलमें पानीकी तरह कहीं न कहींसे आही जाती है, और जो जानेवाला होता है वह हाथीके खाये कैथके भीतरके गूदेकी तरह किसी प्रकार चला ही जाता है।

एक दिन मौका पा कमलश्रीने समुद्रदत्तको अपने पिताके घोड़ोंका भेद बताकर कहा—मेरे पिताके इन घोड़ोंमें दो घोड़े सबसे अच्छे हैं। उनमें एक आकाशमें चलता है, और एक जलमें। आकाशगामी सफेद जलगामी लाल है। और ये दोनों बिल्कुल दुबले-पतले हैं। समुद्रदत्तने तब अपनी नौक-

रीके बदलेमें उन्हीं दोनों घोड़ोंके लेनेका निश्चय किया। कम-लश्रीके इस रहस्यके बतानेसे प्रसन्न होकर वह मनमें विचारने लगा—मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ, क्योंकि विना पुण्यके मनोरथोंकी सिद्धि नहीं होती। इसी समय समुद्रदत्तके मित्र भी अपने अपने मालको बेच-विचाकर और अपने देशमें बिकने योग्य अच्छा अच्छा नया माल खरीद कर देशान्तरसे लौट आये। वे समुद्रदत्तसे मिले। सभीने परस्परको जिमाया और योग्य वस्तुएँ एकने एककी भेंट कीं। नीतिकार कहते हैं—खाना-खिलाना, देना-लेना और अपनी गुप्त बात कहना या सुनना, ये छह मित्रताके लक्षण हैं।

एक दिन समय पाकर समुद्रदत्तने अपने मालिक अशोकके पास जाकर कहा—स्वामी, अब मेरे तीन वर्ष पूरे हो गये, और मेरे साथी भी परदेशसे लौट आये हैं। इसलिए मेरी तनख्वाह आप दे दीजिए, जिससे कि मैं अपने देश चला जाऊँ।

अशोकने कहा—ठीक है, इन घोड़ोंमेंसे जो तुम्हें पसंद हों, दो घोड़े लेलो। अशोककी आज्ञा पा समुद्रदत्तने उन्हीं दोनों आकाश गामी और जलगामी घोड़ोंको छाँट लिया। यह देखकर अशोकको बड़ी चिन्ता हुई।

उसने समुद्रदत्तसे कहा—अरे-ओ मूर्खोंके अगुआ! सचमुच तू बड़ा ही मूर्ख है। तू कुछ नहीं जानता। बतला तो इन बदसूरत और दुबले-पतले घोड़ोंको लेकर क्या करेगा?

दूसरे कीमती और मोटे-ताजे, सुन्दर घोड़ोंको तूने क्यों न लिया? ये तो आजकलमें ही मर जायँगे। समुद्रदत्तने कहा—जो कुछ हो, मैंने तो जिनको एक वार ले लिया सो ले लिया। मुझे दूसरे नहीं चाहिए। यह सुनकर पास बैठे हुए लोगोंने कहा—यह मूर्ख और हठी है। इसको समझाना व्यर्थ है। नीतिकारने कहा है—जलसे अग्नि शान्त हो सकती है, छातेसे घाम वचाया जा सकता है, दवाईसे रोग, और मंत्रसे विप दूर किया जा सकता है, अंकुशसे मदोन्मत हाथी और लाठीसे गाय तथा गधा वशमें किया जा सकता है, पर मूर्ख किसी तरह वशमें नहीं किया जा सकता। कहनेका मतलब यह है कि शास्त्रोंमें सबका इलाज है, पर मूर्खोंका कोई इलाज नहीं।

अशोक बोला—यह बड़ा ही अभागा है और अभागेको अच्छी वस्तु भी बुरी मालूम देती है। यह कहकर वह घर पर आया और घरके सब लोगोंसे उसने पूछा—कि समुद्रदत्तको घोड़ोंका भेद किसने दिया? घरके सब लोगोंने कसमें खा-खाकर अशोकको विश्वास कराया कि हमने घोड़ोंका भेद किसीको नहीं बताया। इतनेमें किसी पाजीने आकर अशोकसे कमलश्रीका सारा हाल कह सुनाया। अशोक सुनकर मनमें कहने लगा—कमलश्री बड़ी दुष्टा है। जान पड़ता है इसीने समुद्रदत्तको घोड़ोंका भेद बताया है। नीतिकारने ठीक कहा है कि जलमें तेल, पात्रमें दान,

बुद्धिवानमें शास्त्र और दुष्टसे कहा हुआ गुप्त रहस्य, ये सब बातें बहुत जल्दी फैल जाती हैं। इन वस्तुओंका स्वभाव ही ऐसा है। स्त्रियाँ जो न करें सो थोड़ा है। वे बदमाशोंके साथ रमती हैं, कुलकी मर्यादाको तोड़ देती हैं, और गुरुजन, मित्र, पति, पुत्र वगैरह किसीको कुछ नहीं समझतीं। सुख, दुःख, जय, पराजय और जीवन-मरणकी बातोंको जो जानते हैं, ऐसे बड़े बड़े तत्त्वज्ञानी भी इन स्त्रियोंके जालमें फँस जाते हैं। झूठ, साहस, माया, मूर्खता, लोभ, अप्रेम और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं।

अशोकने विचारा—यदि मैं इसे घोड़े न दूँ तो प्रतिज्ञा भंग होती है और बड़े आदमीको अपनी प्रतिज्ञाका भंग कभी न करना चाहिए। नीतिकारने कहा है—दिग्गज, कूर्मावतार, कुलपर्वत और शेषनाग आदिसे धारण की हुई यह पृथ्वी तो चलायमान हो सकती है, पर महा पुरुषोंकी प्रतिज्ञा कभी नहीं डिगती।

अशोकने और भी विचारा—यदि मैं कमलश्री पर क्रोध करता हूँ, तो उसे घरका सब रत्ती रत्ती हाल मालूम है, तब संभव है कि वह जमीनमें गड़े हुए धनादिकको भी किसीको बतलादे। क्योंकि रसोइया, कवि, वैद्य भाट (चारण), शस्त्रधारी, स्वामी, धनी, मूर्ख और अपना भेद जाननेवाले पर क्रोध करके उन्हें क्रोधित करना ठीक नहीं। अन्यथा ये मौका पाकर बड़ा अनर्थ कर डालते हैं। ऐसा विचार कर